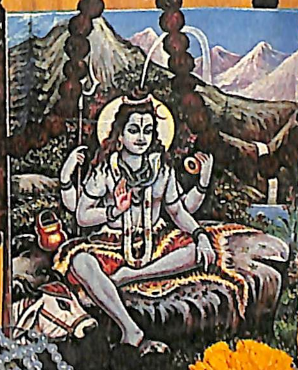
रुद्राक्ष भस्म

और त्रिपुण्ड विज्ञान






रुद्राक्ष-भस्म
और त्रिपुण्ड्र विज्ञान

व्युत्पत्ति, उत्पत्ति, लक्षण, महत्ता, मुखभेद, जातियां, धारण करने के मन्त्र, माला, जप, वनस्पति-विज्ञान और आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से रुद्राक्ष का अध्ययन एवं भस्म त्रिपुण्ड्र विज्ञान।

परम पूज्य ब्रह्म तुल्य पिता
श्रद्धेय स्वर्गीय कविराज
पं० सहदेव उपाध्याय
जी के
कमलवत् चरणों में
समर्पित

ॐ नमः शिवाय

रुद्राक्ष-भस्म और त्रिपुण्ड्र विज्ञान

[पौराणिक, आधुनिक, वैज्ञानिक
और आयुर्वेद के आधार पर]

लेखक : डॉ. राम कृष्ण उपाध्याय
एम.ए., एस.एफ., ए.एस.एफ.

आयुर्वेदतीर्थ, विशारद, साहित्यरत्न

मूल्य : 20.00

रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार

प्रकाशक :
रणधीर प्रकाशन
रेलवे रोड (आरती होटल के पीछे)
हरिद्वार (उ०प्र०) पिन कोड : २४९४०१
फोन : (०१३३) ४२६२९७/४२६१९५

वितरक :
रणधीर बुकसेल्स
रेलवे रोड, हरिद्वार (उ०प्र०)
फोन : ४२८५१०

लेखक : डॉ० रामकृष्ण उपाध्याय

संस्करण : पाचवां १९९७

मुद्रक :
राजा ऑफसेट प्रिंटर्स
विकास मार्ग, दिल्ली-92

RUDRAKSH BHASM AUR TRIPUNDRA VIGYAN
Written By : Dr. Ramkrishan Upadhayay
Published By : RANDHIR PRAKASHAN
HARDWAR (INDIA).

लेखकीय

जगत् जननी परम साध्वी भगवती माँ दुर्गा की कृपा से तथा अपने चिकित्सकीय व्यवसाय से सम्बन्धित मित्रों से रुद्राक्ष विषय पर लिखने की प्रेरणा मुझे प्राप्त हुई। इस विषय पर बहुत से ग्रन्थों में अध्याय पर अध्याय लिखे हुए हैं। किन्तु कोई भी एक ऐसी पुस्तक देखने को नहीं मिली जिसके द्वारा इस पर सर्वाङ्गीण प्रकाश पड़ता हो। आयुर्वेदिक निघण्टुओं तथा अनुसन्धान पत्रकों में इस विषय पर बहुत ही स्वल्प में सामग्री उपलब्ध है। बाजार में रुद्राक्ष की माँग बहुत है। धार्मिक जनता में इसका सम्मान और श्रद्धा करने की प्रवृत्ति दिनोदिन वृद्धि पर है। लोग बिना जाने समझे हुए, विना पहचान के, बिना किसी विधि के रुद्राक्ष धारण कर लेते हैं। उनमें से ही कुछ लोग इसके प्रति कुछ जानकारी रखने की उत्सुकता भी रखते हैं किन्तु उन्हें जो जानकारी दी जाती है; वह प्राय: सब भ्रामक और असन्तोषकर होती है। मेरे कई मित्रों ने इसी विषय में मुझ से जिज्ञासा की। आयुर्वेद सम्मेलनों में भी इस विषय पर कुछ चर्चाएँ चलीं। फलत: मेरे मन में विचार आया क्यों न एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित की जाए. जिससे रुद्राक्ष पर सर्वाङ्गीण सामग्री एक ही स्थान पर एवं प्रामाणिक रूप में उपलब्ध हो सके। मुझे यह ज्ञात नहीं कि इस तरह की कोई पुस्तक पहले से वर्तमान है या नहीं। यदि कोई पुस्तक इस तरह की प्रकाशित हो भी चुकी है तो वह सम्भवत: कम प्रचलन में होगी क्योंकि बाजार में देखने को वह नहीं मिली। मैंने प्रमुख प्रकाशकों के सूचीपत्र देखे, पुस्तक विक्रेताओं से जानकारी प्राप्त की। हरिद्वार और काशी के पुस्तकालयों की खाक छानी किन्तु मुझे रुद्राक्ष पर प्रामाणिक सामग्री देने वाली कोई पुस्तक न मिली। जो मिले वे संहिता ग्रंथों, पुराणों के ही छुट-पुट अंश थे अथवा उन्हीं में से कुछ लेकर कुछ अपनी ओर से बढ़ाकर लिखे गए थे। अत: मैंने सर्वमान्य एवं पूर्णत: प्रामाणिक संहिता ग्रंथों और पुराणों को ही अपनी पुस्तक का आधार विषय बनाया। इस पूरी पुस्तक में मेरे अपने विचार और अनुभव जहाँ तहाँ विमर्श के रूप में या टिप्पणियों के रूप में ही हैं। मैंने कोई

अनुसन्धान नहीं किया है और न किसी नये तथ्य पर प्रकाश ही डाला है। मेरा तो यह प्रयास रहा है कि बिना अधिक विस्तार किए हुए जो भी अधिक से अधिक प्रामाणिक सामग्री प्राप्त हो सके एक ही छोटी पुस्तिका में संग्रहित कर दूँ ताकि जन सामान्य अपनी रुद्राक्ष विषयक जिज्ञासा मेरी पुस्तक पढ़कर शान्त कर सके। उसे सही जानकारी पाने का सन्तोष हो। मैंने यह भी प्रयास किया है कि मेरी पुस्तक की भाषा क्लिष्टता से रहित और आसानी से समझ पाने के योग्य हो। साथ ही पुस्तक का मूल्य भी उतना ही रखा जा सके जिससे कि प्रकाशक को भी घाटा न हो और साधारण पाठक भी उसे सरलता से खरीद सके।

पुस्तक लेखन के रूप में ये मेरा प्रथम प्रयास है। मैं अपने विषय को प्रस्तुत करने में कितना सक्षम और सफल हुआ हूँ यह तो पाठक बता सकेंगे। अधिकारी विद्वानों से मेरी विनम्र अपेक्षा रहेगी कि वे अनुग्रह पूर्वक अपने सम्मति परामर्श से मुझे लाभान्वित करेंगे। सुझावों और उपयोगी सामग्रियों का प्रयोग पुस्तक के अगले संस्करण में किया जा सकेगा।

—डा० राम कृष्ण उपाध्याय

विषय-सूची

भस्म और त्रिपुण्ड्र

शिव स्तुति

निराकारं ज्ञानगम्यं परं यन्नैवस्थूलं नापिसूक्ष्ममेव न चोच्चम् ।
अन्तश्चित्यं योगिभिस्तस्य रूपं तस्मैतुभ्यं लोककर्त्रे नमोस्तु ।।
सर्वं शान्तं निर्मलं निर्विकारं ज्ञानागम्यं स्वप्रकाशेऽविकारम् ।
खाध्व प्रख्यं ध्वांतमार्गात्परस्ताद्रूपं यस्य त्वां नमामि प्रसन्नम् ।।
एकं शुद्धं दीप्यमानं तथाजं चिदानंदं सहजं चाविकारि ।
नित्यानंदं सत्यभूतिप्रसन्नं यस्य श्रीदं रुपमस्मै नमस्ते ।
विद्याकारोद्भावनीयं प्रभिन्नं सत्वच्छंदं ध्येयमात्मस्वरूपम् ।
सारं पारं पावनानां पवित्रं तस्मै रुपं यस्य चैवं नमस्ते ।।
यत्त्वाकारं शुद्धरुपं मनोज्ञं रत्नाकल्पं स्वच्छ कर्पूर गौरम् ।
इष्टाभीती शूलमुण्डे दधानं हस्तैर्नमोयोगयुक्तायतुभ्यम् ।।
गगनं भूर्दिशश्चैव सलिलं ज्योतिरेव च ।
पुनः कालश्च रुपाणि यस्य तुभ्यं नमोस्तु ते ।।
प्रधान पुरुषौ यस्य कायत्वेन विनिर्गतौ ।
तस्माद्व्यक्तरुपाय शंकराय नमोनमः ।।
यो ब्रह्मा कुरुते सृष्टिं यो विष्णुः कुरुते स्थितिम् ।
संहरिष्यति यो रुद्रस्तस्मै तुभ्यं नमोनमः ।।
नमोनमः कारणकारणाय दिव्यामृत ज्ञानविभूतिदाय ।
समस्त लोकांतर भूतिदाय प्रकाश रूपाय परात्परराय ।।
यस्याऽपरं नो जगदुच्यते पदात् क्षितिर्दिशस्सूर्य इन्दुर्मनोजः ।
बर्हिर्मुखा नाभितश्चान्तरिक्षं तस्मै तुभ्यं शम्भवे मे नमोस्तु ।।
त्वं परः परमात्मा च त्वं विद्या विविधा हरः ।

यस्य नादिर्न मध्यं च नांतमस्ति जगद्यतः।
कथं स्तोष्यामि तं देवं वाङ्मनोगोचरं हरम्॥
यस्य ब्रह्मादयो देवामुनयश्च तपोधनाः।
न विप्रण्वंति रुपाणि वर्णनीयः कथं स मे॥
स्त्रिया मया ते किं ज्ञेया निर्गुणस्य गुणाः प्रभो।
नैव जानंति यद्रूप सेन्द्रा अपि सुरासुरा॥
नमस्तुभ्यं महेशान नमस्तुभ्यं तमोमय।
प्रसीद शंभो देवेश भूयो भूयो नमोस्तु ते॥

॥ ॐ शिवार्पणमस्तु ॥

(रुद्रसंहिताया २/ सती खण्ड २/ अ० ६/ श्लोक १२-२६)

भावार्थ—हे प्रभो ! आप निराकार ज्ञान से परे हैं न सूक्ष्म हैं, न स्थूल हैं और न उच्च ही। इसीलिए आपका सुन्दर स्वरूप योगियों के चिन्तन करने योग्य अर्थात् ध्यान में धारण करने योग्य है ऐसे लोक कर्त्ता आपको नमस्कार है। शान्त, निर्मल, निर्विकार, ज्ञान से जानने योग्य अपने प्रकाश में विकार रहित परब्रह्म मार्ग के ज्ञाता ध्वात मार्ग से परे रूप वाले प्रसन्न चित्त वाले आपको नमस्कार है। एक शुद्ध प्रकाशमान अज चिदानन्द सहज विकार रहित नित्यानन्द सत्यैश्वर्य से प्रसन्न रूप वाले आपके लिए मेरा नमस्कार है। मंत्ररूप विद्या से प्राप्त अभिन्न सत्यस्वरूप ध्यान के योग्य आत्म स्वरूप सार पवित्रों से भी पवित्र रूप वाले प्रभु आपको प्रणाम है। जो आकार शुद्ध रूप है, मनोज्ञ रत्नवत् शरीर की कांति है, स्वच्छ कर्पूर के समान गौर वर्ण सेवक को अभय देने वाले, हाथों में शूल और मुण्ड को धारण करने वाले योगयुक्त आपको मेरा नमस्कार है। आकाश पृथ्वी, दिक् जल, ज्योति, समय, रूपवाले आपके लिये मेरा नमस्कार है। जिसके शरीर से ब्रह्मा और

ऐसे रुद्रत्रय युक्त आपके लिए नमस्कार है। कारणों के कारण दिव्य ज्ञान ऐश्वर्य के दाता संसार को ऐश्वर्य देने वाले प्रकाश रूप परे से परे शंकर के लिए मेरा नमस्कार है। जिसके पैर से पृथ्वी, दिशायें, सूर्य चन्द्रमा, काम और नाभि से बहिर्मुख और आकाश उत्पन्न हुए ऐसे आपके लिए मेरा नमस्कार है। हे शंकर जी आप पर हैं, परमात्मा हैं, नाना प्रकार की विद्या आप ही हैं, सद्ब्रह्म और परब्रह्म आप ही हैं और विचार चतुर आप ही हैं। जिसका न आदि है और न अन्त ही और न मध्य ही है, वाणी और मन से परे देव शिवजी की स्तुति कैसे करूँ। जिसके रूप को ब्रह्मादिक देवता तप रूप धनवाले मुनि नहीं जान सकते उन्हें मैं कैसे कह सकती हूँ। जिस आपके रूप को इन्द्र आदि देवता और दैत्य नहीं जानते हैं उस निर्गुण आपके गुण को क्या मैं स्त्री होकर जान सकती हूँ अर्थात् कदापि नहीं। हे महेशान ! आपके लिए नमस्कार है, हे देवेश प्रसन्न होओ आपके लिए बारम्बार नमस्कार है।

शिवपुराण (रुद्र संहिताया २/ सती खण्ड २/ अ० ६/ श्लोक १२-२६)



रुद्राक्ष की व्युत्पत्ति

रुद्राक्ष=रुद्र+अक्ष।

रुद्र शब्द रुत् से बना है और रुत् का अर्थ होता है—

१. रुत्—रवं, शब्दं, ज्ञानं, राति, ददातिति रुद्रः।

२. रूजं—द्रावयति, नाशयति इति रुद्रः। रुज का अर्थ रोग—व्याधि से है जो रोग-व्याधि का नाश करे।

३. और **रोदयति इति रुद्रः** भी कहा गया है अर्थात् रुद्र-रोदयति असुरान् इस व्युत्पत्ति के अनुसार राक्षसों को पीड़ित करने वाला है। इस अर्थ में **रुदिर अश्रु विमोचने** इस धातु से **'रोदेर्णि लुक च'** 'उणादि' सूत्र से रक् प्रत्यय एवं णि का लोप होने पर रुद्र शब्द की सिद्धि होती है जिसका अर्थ राक्षसों का विनाशक शंकर से है।

रुत्—रवं, शब्दं, ज्ञानं, राति, ददादितितिरुद्रः। रुत शब्द रु गतौ धातु से भाव में क्विप प्रत्यय होकर 'ह्रस्वरूप पिति कृति तुक' इस सूत्र से तुक प्रत्यय होकर सिद्ध होता है। **'ये गत्यार्थास्तेज्ञानार्था'** इस उक्ति के अनुसार रु **गतौ** धातु का ज्ञान होता है। यथा **"अज्ञान नाशको जगद्गुरुः परमात्मा सदाशिवः"** इति रुत् उपपदक रा दाने धातु से क प्रत्यय होकर रुद्र शब्द की सिद्धि ज्ञान (आत्मज्ञान) प्रदान करने वाला रुद्रः मोहनाशकः कहा गया है।

"हलायुध" शब्दकोष के अनुसार

रुद्र—पुं [रोदयतिति रुद्रः, रुद्र+णिच्+रोदेणिलुक् च। इति रक्रणेश्च लुक्।] शिवः, महादेवः, शंकरः, उमापतिः, त्रिजटश्चीर वासाश्च रुद्रः। कहा गया है।

"बाँगला भाषार अभिधान" नामक कोष के अनुसार—रुद्र—रुद+णिच्=रोदि अर्थात् जो रोदन करे+र।

रुद्र शब्द की उत्पत्ति के विषय में एक बड़ी ही रोचक धार्मिक कहानी है जो इस प्रकार है । एक समय सृष्टि कर्त्ता ब्रह्मा जी कल्प-रात में सृष्टि करने की चिन्ता में ध्यानमग्न थे । उसी ध्यानावस्था में ब्रह्मा जी के ललाट से एक शक्ति बालक रूप में मूर्तरूप होकर अवतरित हुआ तथा रोते-रोते इधर-उधर घूमने लगा । अतः ब्रह्मा ने उस बालक को रुद्र नाम से पुकारा । रोदन से उत्पन्न होने के कारण उस बालक को रुद्र, भव, शर्व्व, शेषान्, पशुपति, भीम, उग्र व महादेव इन आठ नामों से विभूषित किये । एकादश मूर्ति में एकादश रुद्र नाम प्रसिद्ध है । वि, शिव, शिवेर, संहारमूर्ति आदि एकादश नामों में से हैं ।

"रुद्र तोमार दारूण दीप्ति एसेछे दूआर भेदिया ॥रवी० ॥

"मानक हिन्दी कोष" के अनुसार

रुत्—पुं० [सं० √रु (शब्द)+क्त)

पक्षियों का कलरव, शब्द, ध्वनि।

तथा स्त्रीलिंग होने पर रूत् का अर्थ ऋतु हो जाता है।

रुद्र—वि० [सं० √रुद्र+णिच+रक्, णि—लुक]।

रुद्र का अर्थ होता है। (१) रुलाने वाला, (२) रोना बंद करने वाला, (३) डरावना, भयंकर ।

पुलिंग रूप में रुद्र का अर्थ होता है—

१. एक प्रकार के गण देवता जिनकी उत्पत्ति सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा के भौंहों से मानी गई है जो संख्या में ग्यारह कहे गये हैं।

२. उपरोक्त के आधार पर ११ सूचक संख्या की संज्ञा है ।

३. प्राचीनकालीन एक प्रकार के बाजा का नाम भी रुद्र है ।

४. आक या मदार के पौधे के लिए भी रुद्राक्ष नाम आया है।

५. साहित्यानुसार रस के भेदों में रौद्र नाम से भी एक रस रौद्र-रस वर्णित है ।

अक्ष—अशेर्देवने ।।६५।। अक्ष ।।६६।। अमरकोषे)

अर्थात् अश धातु से क्रीड़ा अर्थ **में स** प्रत्यय कर देने पर अक्ष शब्द की सिद्धि होती है।

अक्षि—अक्षि शब्द अशू व्याप्तौ धातु से अशनित् इस उणदि सूत्र से क्सि प्रत्यय होकर अक्षि शब्द की सिद्धि होती है।

रुद्राक्ष—"मानक हिन्दी कोष" के अनुसार

(१) यह एक प्रकार का बीज जिसे पिरो कर पहनने तथा जपने के लिए मालाएँ बनाई जाती हैं। उसे रुद्राक्ष कहते हैं।

२, उक्त पेड़ का बीज जो शिव का परम् प्रिय कहा गया है उसे रुद्राक्ष कहते हैं।

पुं० [रुद्र+अक्षि, ष० त०+अच्] इतिरुद्राक्षः।

"**बांग्ला भाषार अभिधान**" नामक ग्रन्थ में भी रुद्राक्ष का—रुद्र + अक्षि (अक्ष) रुद्राक्ष वर्णन है।

"**वाचस्पत्यम्**" नामक कोष में रुद्राक्ष की निरुक्ति इस प्रकार वर्णित है।

रुद्राक्ष—रुद्रस्याक्षि कारणत्वेनास्त्यस्य अच्।

स्वनामख्याते वृक्षे, तन्माहात्म्यमापि नि० सि० उक्तं यथा।

"**शब्दस्तोममहानिधि**" नामक कोष में भी रुद्राक्ष को पुं—रुद्रस्याक्षीव वच स्वनामख्याते वृक्षे वर्णन किया गया है तथा

"**शब्दकल्पद्रुम**" में भी रुद्राक्ष को पुलिंग स्वनामख्यात वृक्षः ही कहा गया है।

पर्यायनामानि रुद्राक्षस्य

तृणमेरुःअमरः, पुष्पचामरः (इतिशब्द रत्नावली)

रुद्राक्षस्य फल पर्याय—शिवाक्षम्, सर्पाक्षम्, भूतनाशनम्, पावनम्, नीलकण्ठाक्षम्, हराक्षम्, शिवप्रियम्। (शब्दकल्प द्रुम)

रुद्राक्ष की उत्पत्ति

रुद्राक्ष की उत्पत्ति के कारण का इतिहास भी ठीक उसी प्रकार कौतूहलपूर्ण रोचक व साथ ही आश्चयजनक भी है जिस तरह कि पारद की उत्पत्ति का इतिहास। पारद की उत्पत्ति भगवान शिव के वीर्य से कहा गया है तो मां भगवती के रज को गंधक की उत्पत्ति का कारण। पुरुष स्त्री का वीर्य व रज मिलकर तो जीव की उत्पत्ति करते हैं। परन्तु भगवान शिव का पारद रूपी वीर्य व मां भगवती का गंधक रूपी रज मिलकर कज्जली का निर्माण करता है जो कि औषधि कर्म में प्रयोग किया जाता है। ठीक इसी प्रकार ज्वर की उत्पत्ति भी शिव को अत्यधिक क्रोध हो जाने के कारण उत्पन्न हुआ। यह क्रोध शिव के शरीर से गरम उत्ताप होकर बाहर निकला और ज्वर का रूप धारण किया। तथा यह ज्वर तब से लेकर आज तक हम सभी प्राणियों को संताता रहता है। यह अपने में एक रहस्यमय व आश्चर्यजनक होने के साथ ही अविश्वसनीय ही नहीं अपितु असत्य भी प्रतीत होता है। जैसे कुन्ती के कान से कर्ण का पैदा होना।

रुद्राक्ष की उत्पत्ति के विषय में भिन्न-भिन्न धर्म ग्रन्थों में अपने-अपने ढंग से वर्णित है जो निम्न प्रकार है—

अति प्राचीन काल में भगवान शंकर के नेत्र से त्रिपुरासुर नामक राक्षस के वध होने के बाद आंसू की बूँदें जमीन पर गिर पड़ीं। उसी के फलस्वरूप उन अश्रुकणों से वृक्ष व फल की उत्पत्ति हुई। इस प्रसिद्ध वृक्ष व फल को ही रुद्रास नाम से पुकारा जाता है। यथा—

"त्रिपुरस्य बधे काले रुद्रस्याक्षोऽपतंस्तु ये।
अश्रुणो विन्दवस्ते तु रुद्राक्षा अभवन् भुवि॥

(संवत्सर प्रदीपे)

'देवी भागवत् पुराण' नामक हमारे धार्मिक ग्रन्थ में रुद्राक्ष की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि भगवान् रुद्र (शंकर) ने रुद्राक्ष की उत्पत्ति के विषय में अपने कमल नयनों से अमूल्य अश्रु विन्दुओं के गिरने से ही बताया है। ये अश्रु बिन्दु उस समय गिरे थे जबकि रुद्र ने त्रिपुर नामक राक्षस को मारने के लिए अघोर नामक महाशस्त्र की चिंतन करने के लिए दिव्य सहस्त्र वर्षों तक अपनी आँखों को वंद रखा। तत्पश्चात् नेत्र खोलने पर उनके कमल नेत्र से पवित्र आँसू की बूंदें गिरी थीं। उन्हीं अश्रु बिन्दुओं से रुद्र की आज्ञा से सभी प्राणियों की भलाई की कामना से रुद्राक्ष नामक दिव्य वनस्पति का उद्भव हुआ। यथा—

दिव्यवर्ष सहस्त्र तु चक्षुरुन्मीलि मया।
पश्चान्ममाकुलाक्षिभ्य: पतिता जलबिन्दव: ।।७।।
तत्राश्रु विदुतो जाता महारुद्राक्ष वृक्षका: ।
ममाऽऽज्ञया महासेन सर्वेषां हितकाम्यया ।।८।।

(देवी भागवत् पुराण/११ स्कंध/अ० ४)

"शिव महापुराण" नामक पवित्र ग्रन्थ में वर्णन है कि एक वार माँ भगवती पार्वती तथा परम पिता परमेश्वर शिवशंकर दोनों ही बैठकर आपस में प्रेमालाप कर रहे थे। उसी समय पार्वती जी ने शिव जी से रुद्राक्ष की उत्पत्ति के विषय में जानने की हार्दिक उत्कट इच्छा व्यक्त की। तब भगवान शंकर ने पार्वती से रुद्राक्ष की उत्पत्ति का कारण वताते हुए वोले। हे देवी सुनो! एक बार दिव्य सहस्त्र वर्षों तक मुझे तपस्या करते हुए और एकाग्र मन करते हुए मेरा मन क्षुभित हो गया। तब स्वतंत्र परमेश्वर लोक के उपकार के लिए मैंने लीला से अपने नेत्र को वन्द कर लिया। पुन: जब नेत्रों को खोला तो मेरे नेत्रपुट से जल के कुछ विन्दु गिरे और उन आँसुओं से ही रुद्राक्ष के वृक्ष उत्पन्न हुए। यथा—

पुटाभ्यांचारू चक्षुर्भ्यां पतिता जलबिन्दवः।
तत्राश्रुबिन्दवो जाता वृक्षारुद्राक्ष संज्ञका ॥ ७ ॥

(विद्येश्वर संहिता/अध्याय २५)

'वृहज्जाबालोपनिषद्' में रुद्राक्ष की उत्पत्ति के विषय में वर्णन है कि भुशुण्डी जी द्वारा कालाग्निरुद्र से रुद्राक्ष की उत्पत्ति व उसके धारण करने से क्या फल होता है के विषय में पूछा। तब भगवान कालाग्नि रुद्र बोले कि दिव्य सहस्त्र वर्षों तक तपस्या करने के बाद जब मैंने त्रिपुरासुर को मारने के लिए अपने नेत्र खोले तब मेरे नेत्र से जल की बूँदें पृथ्वी पर गिरीं। उन्हीं नेत्र बूँदों से रुद्राक्ष की उत्पत्ति हुई। यथा—

स होवाच् भगवान कालाग्निरुद्रस्त्रिपुरवधार्थायाहममीलिताक्षोऽभवं नेत्रेभ्यो जलबिंदवो भूम्यै पतितास्ते रुद्राक्षा जाता:।

—(वृहज्जाबालोपनिषद्:।)

विमर्श—भगवान रुद्र के नेत्र बिन्दु से रुद्राक्ष की उत्पत्ति धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित है तथा इसे समस्त हिन्दू संस्कृति मानती है कि रुद्राक्ष की उत्पत्ति का कारण भगवान शंकर के नेत्र बिन्दु हैं किन्तु मुझे अपनी वैज्ञानिक दृष्टि से नेत्र-बिन्दु से रुद्राक्ष की उत्पत्ति आश्चर्यजनक ही नहीं अपितु अविश्वसनीय सी ही लगती है। क्योंकि अब कहीं भी सुनने देखने या पढ़ने को नहीं मिलता कि अमुक प्राणी के वीर्य व रज के भूमि पर गिरने से, अश्रु-बिन्दु से, आवाज से आदि भिन्न-भिन्न शरीर के विकारों से अमुक प्राणी, अमुक वनस्पति अथवा अमुक खनिज का उत्पत्ति हुआ। ऐसा क्यों नहीं होता दिखाई देता। कारण स्पष्ट है कि ऐसा सम्भव नहीं है। यदि कोई कहे कि यह सब देवताओं से ही सम्भव है हम प्राणियों से नहीं तो मैं मानने को तैयार नहीं हूँ, क्योंकि यदि भगवान शिव की किसी जमाने की क्रोधाग्नि रूपी ज्वर आज भी हम निरीह प्राणियों को सता रहा है तो हम

लोगों के शारीरिक विकारों से भी ऐसा होना चाहिए था। हाँ यह बात मानने योग्य है कि इस संसार में ऐसी एक अदृश्य शक्ति है जो कि इस जगत् के सभी प्रकार के चर-अचर प्राणियों, वनस्पतियों व खनिजों की उत्पत्ति व विनाश लीला को अपने एक निश्चित विधान के अनुसार करती रहती है और उसी प्राकृतिक (दैविक) विधान के अनुसार रुद्राक्ष की भी उत्पत्ति व विनाश होता है। न कि अश्रु बिन्दु से।

अश्रु बिन्दु से उत्पत्ति परम कारण भगवान शंकर की विभूति ही है।

वास्तव में भारतीय लेखन की यह परम्परा रही है कि वह ज्ञान-विज्ञान को भी रूपक के रूप में अलंकारिक तौर पर अंकित करता रहा है। प्रत्येक विषय तथा वस्तु के मूल में ईश्वरीय सत्ता या ईश्वरीय सम्बन्ध को स्वीकारना बताना भी हमारे देश के लिए एक रूढ़ि ही बनी हुई है। यही कारण है कि धातुओं से लेकर प्राणियों और वनस्पतियों तक की उत्पत्ति के मूल में ऐसा इतिहास मिलता है जिससे किसी देवी-देवता महापुरुष या ईश्वरीय सत्ता सम्बन्ध का बोध होता है। यही कारण है कि हमारी नदियाँ किसी न किसी देवी की अंश-अवतार स्वरूपा हैं। पीपल, बरगद जैसे वृक्ष ब्रह्मा-विष्णु के स्वरूप माने जाते हैं। धात्री लक्ष्मी स्वरूपा मानी जाती है। तीर्थों और स्थानों के विषय में भी ऐसा उदाहरण है। हमारे पाषाण खण्ड कहीं ज्योतिलिंग, कहीं नर्मदेश्वर तो कहीं शालिग्राम शिला के रूप में पूजे जाते हैं। इनकी वैज्ञानिक प्रमाणिकता व युक्ति-युक्तता संदेहशील है। इस तरह की प्रवृति हमारे सम्पूर्ण वाङ्मय में ही नहीं अपितु हमारे आचार-विचार व जीवन पद्धति में भी वर्तमान है। अपनी इस आस्था-निष्ठा की ओढ़ी हुई परतों के नीचे हम अपनी बुद्धि तथ्यात्मक ज्ञान को ढकते रहे हैं। परिणाम यह हुआ कि मुख्य

वस्तु या तथ्य से हमारा सम्बन्ध उतना न हो सका जितना कि उसकी बाहरी क्रिया-काण्ड की या अंधविश्वास की परतों से कायम हो सका। व्यक्ति या वस्तु की दृष्टि से ओझल हो गया। उसका नकली मुखौटा या बाहरी आवरण मात्र सामने रहा। इस बाहरी आवरण को हटाने का प्रयास वैदिककाल से होता रहा है। जिसने यह कहा था कि--

"हिरणमयेन पात्रेण सत्यस्यापितमुखं" अर्थात् उसको सत्य की अनुभूति थी। इसलिए उसने प्रार्थना की कि—तत्तवम्पुषन् अपावृणु सत्यधर्मायदृष्टये। हम उसी सत्यधर्मा की दृष्टि की अपेक्षा करते हैं। यद्यपि हमारा विषय रुद्रास की उत्पत्ति के विषय में इस किंवदन्ति की आलोचना करना नहीं है, अपितु रुद्राक्ष के विषय में उपलब्ध अधिक से अधिक तथ्यों को पाठकों के समक्ष रखना है। फिर भी मैं अपना विचार प्रकट करने का अवसर इसलिए नहीं छोड़ना चाहता कि पाठक पुस्तक में आगे वर्णित विश्वासों और अंधविश्वासों के विषय में पढ़कर भ्रम में न पड़ जायें।

रुद्राक्ष की उत्पत्ति स्थान

'शिव महापुराण' के अनुसार रुद्राक्ष की उत्पत्ति स्थान गौड़देश तथा शिव के प्रिय स्थान मथुरा, अयोध्या, लंका, मलयाचल, सह्यपर्वत, काशी तथा दूसरे कई अन्य देशों में भी पापनाशक स्थान है।

यथा—भूमौगौडोद्भवांश्चक्रे रुद्राक्षाञ्छिववल्लभान।
मथुरायामयोध्यायांलंकायांमलयेतथा ॥९॥

सह्याद्रौचतथा काश्यांदेशेष्वन्येषुवातथा ।
परानसह्यापापौघभेदनाञ्छतिनोदनान् ॥१०॥

(विद्येश्वर संहिता/अ० २५)

रुद्राक्ष की जातियाँ

(१) रंगभेद से रुद्राक्ष चार प्रकार का होता है।

(i) श्वेत वर्ण (ii) रक्त वर्ण, (iii) पीतवर्ण व (iv) कृष्ण वर्ण।

यथा—श्वेत रक्त पीत कृष्णा वर्णा ज्ञेया क्रमाब्दुधैः ।।११।।

+ + + +

(विद्यश्वर संहिता/अध्याय २५)

(२) मुखभेद के अनुसार रुद्राक्ष चौदह प्रकार का होता है। यथा— एक मुखी, दो मुखी, तीन मुखी, चार मुखी आदि क्रम से १४ मुखी तक।

(३) 'देवी भागवत् पुराण' के अनुसार अड़तीस प्रकार का भी रुद्राक्ष का वर्णन है। सूर्य नेत्र से कपिल वर्ण के १२ प्रकार के रुद्राक्ष उत्पन्न हुए तथा सोम नेत्र से उत्पन्न हुए रुद्राक्ष श्वेत वर्ण के सोलह प्रकार के हुए और वह्नि नेत्र से उत्पन्न हुए रूद्राक्ष कृष्ण वर्ण के दस भेद वाले हुए। यथा—

बभूवुस्ते च रुद्राक्षा अष्टत्रिंशत्प्रभेदतः।
सूर्यनेत्रसमुद्भूताः कपिला द्वादश स्मृता ।।९।।
सोमनेत्रोत्थिताः श्वेतास्ते षोडशविधा क्रमात्।
वह्निनेत्रोद्भवाः कृष्णा दशभेदा भवन्ति हि।।१०।।

(देवी भागवत्/११ स्कन्ध/अ० ४)

श्वेतवर्ण रुद्राक्ष जाति से ब्राह्मण, रक्त वर्ण रूद्राक्ष जाति से क्षत्रिय, मिश्र वर्ण (पीत वर्ण) रुद्राक्ष जाति से वैश्य तथा कृष्ण वर्ण रुद्राक्ष शूद्र जाति का कहलाता है। यथा—

श्वेतवर्णश्च रूद्राक्षोजातितोब्राह्मउच्यते।
क्षात्रोरक्तस्तथा मिश्रो वैश्यः कृष्णस्तु शूद्रकः ।।११।।

(देवी भागवत्/११ स्कन्ध/अ० ४)

श्रेष्ठ रुद्राक्ष की पहचान

आजकल के उन्नतिशील भारत में किसी वस्तु या किसी चीज का हुबहू नकल (Duplicate) तैयार करना सामान्य बात है तथा किसी वस्तु में ज्यादा मुनाफे के लालच में किसी उससे मिलते-जुलते अपद्रव्य का समिश्रण कर देना भी वर्तमान युग में धर्भ सा ही बन गया है। तो भला आज के युग में बढ़ते रुद्राक्ष की मांग को देखते हुए रुद्राक्ष के व्यापारीगण भी नकली रुद्राक्ष का निर्माण करने में क्यों पीछे रहेंगे। आपको ऐसे-ऐसे नकली रुद्राक्ष देखने को मिल जायेंगे जो कि हम जैसों का क्या बुद्धिमान व्यक्ति भी आसानी से नहीं जान पाएगा कि यह रुद्राक्ष असली है या नकली। कारण नकली रुद्राक्ष में भी असली जैसे रंगरूप व पहचान के गुण उसमें विद्यमान कर दिया गया होता है। जो रुद्राक्ष घटिया किस्म के त्यागने योग्य होता है उन्हें काटकर फेवीकोल तथा क्वीकफिक्स आदि अन्य मजबूती से चिपकने वाले पदार्थों की सहायता से चिपका कर तथा बेर की गुठलियों से आदि का नकली रुद्राक्ष बनाकर असली के रूप में बेचते हैं। कुछ धोखेबाज सीधे-साधे शिवभक्त या जरूरतमन्द को बेंत के बीज को ही रुद्राक्ष का फूल कह कर बेचते हैं जबकि रुद्राक्ष का फूल रुद्राक्ष के बीज जैसा माला गूंथने लायक नहीं होता। अतः आपको सही रुद्राक्ष किसी विश्वसनीय ईमानदार व्यापारी से ही प्राप्त हो सकता है, साधु-महात्माओं का रूप धारण कर रुद्राक्ष बेचने वालों से नहीं।

फिर भी शास्त्रीय आधार पर श्रेष्ठ रुद्राक्ष का जो लक्षण वर्णित है उसका नीचे उल्लेख कर रहा हूँ।

आमलकी फल के समान आकार वाला रुद्राक्ष श्रेष्ठ होता है। बदरीफल के समान के आकार वाला रुद्राक्ष मध्यम होता है तथा चने के मात्रा के समान के आकार वाला रुद्राक्ष अधम कहा गया है। यथा—

धात्रीफल प्रमाणं यच्छ्रेष्ठये तदुदाहृतम् ।
बदरीफल मात्रं तु मध्यमं सम्प्रकीर्त्तितम् ।।१४।।
अधमं चण मात्रं स्यात्प्रक्रियैषापरोच्यते ।।१५।।

(विद्येश्वर संहिता/अध्याय २५)

जिस रुद्राक्ष में स्वयं छिद्र का निर्माण हुआ हो वह रुद्राक्ष उत्तम है तथा मनुष्य द्वारा किया गया छिद्र वाला रुद्राक्ष अधम है। यथा—

स्वयमेवकृत द्वारं रुद्राक्षंस्यादिहोत्तमम् ।
यत्तुपौरुष यत्नेन् कततन्मध्यमं भवेत् ।।२३।।

(विद्येश्वर संहिता/अ० २५)

पुनः रुद्राक्षों में भद्राक्ष धारण का वड़ा पुण्य माना गया है। आमले के समान आकार का रुद्राक्ष श्रेष्ठ है। यथा—

रुद्राक्षाणां तु भद्राक्ष धारणात्स्यान्महाफलम् ।
धात्रीफल प्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम् ।।६।।

(देवी भागवत/११ स्कन्ध/अध्याय ७)

बेर के सदृश का रुद्राक्ष मध्यम दर्जे का तथा चने के सदृश का रुद्राक्ष अधम माना गया है। यथा—

बदरीफल फलमात्रं तु प्रोच्यते मध्यमंबुधैः ।
अधमं चण मात्रं स्यात्प्रतिज्ञैषामयोदिता ।।७।।

(देवी भागवत/११ स्कन्ध/अ० ७)

समस्निग्ध, दृढ़, गोल दानों को रेशम के धागों में पिरो कर पहनना चाहिए। जब रुद्राक्ष शरीर में साम्यतापूर्वक अद्भुत विलक्षण गुण

धारण करे। जैसे कि कसौटी पर सोने का घर्षण करने से रेखा पड़ जाती है, ठीक इसी प्रकार कसौटी पर जिस रुद्राक्ष को घिसने से रेखा पड़ जाय उस उत्तम रुद्राक्ष को शिव भक्तों को धारण करना चाहिए। यथा—

समान्स्निग्धान्दृढान्वृतान्क्षौमसूत्रेणधारयेत् ॥१३॥
सर्वगात्रेषु साम्येन समानाऽतिविलक्षण।
निघर्षे हेमलेखाभा यत्र लेखा प्रदृश्यते ॥१४॥

(देवी भागवत/११ स्कन्ध)

पुनः,

समाः स्निग्धा दृढ़ास्तद्वत्कण्टकैः संयुता शुभा ॥

हीन रुद्राक्ष के लक्षण

आमले से छोटे अत्यन्त लघु, भग्न या किसी प्रकार से हीन हुए, कंटकहीन, कृमि के खाये हुए तथा छिद्रहीन रुद्राक्ष को मंगल चाहने वाले को धारण नहीं करना चाहिए। यथा—

आवावामलकात्स्वतोलघुतरा रुग्णस्ततः कण्टकैः
संदष्टाः क्रिमिभिस्तनुपकरणच्छिद्रेणहीनास्तथा।—

(विद्येश्वर संहिता/अ० २५/४६)

पुनः,

कृमि खाये हुए, छिन्न-भिन्न कंटकों से हीन, व्रणयुक्त, गोलाई हीन ऐसे दोषों से युक्त रुद्राक्ष को त्याग देना चाहिए।

क्रिमि दुष्टं छिन्न-भिन्नं कंटकहीनमेवच।
व्रणयुक्तमवृतं च रुद्राक्षानषड्विवर्जयेत् ॥२२॥

(विद्येश्वर संहिता/अध्याय २५)

पुनः,

क्रिमिदष्टाञ्छिन्नान्कण्टकै रहितांस्तथा ॥११॥
व्रणयुक्तानाऽऽवृतांश्चषड्रुद्राक्षांस्तुवर्जयेत् ॥१२॥

(देवी भागवत्/११ स्कन्ध/अ० ७)

देवी भागवत में भी हीन रुद्राक्ष के लिए कहा गया है कि कृमियों द्वारा खाये हुए, अंगों में छिन्न-भिन्न, कंटकों से रहित, व्रणयुक्त तथा गोलाकार आकृति से हीन रुद्राक्ष को त्याग करना चाहिए। इसे कल्याण चाहने वाले को धारण नहीं करना चाहिये।

दो तांबे के टुकड़ों के बीच असली रुद्राक्ष को रखने पर घूम जाता है, नकली नहीं।

असली रुद्राक्ष पानी में डूब जाता है, नकली नहीं।

रुद्राक्ष की गुण महत्ता

रुद्राक्ष के गुण व महत्ता के सम्बन्ध में कहना बड़ा कठिन है क्योंकि ग्रन्थ के ग्रन्थ इसके गुण गरिमा के बखान में अध्याय पर अध्याय रंगे हुए हैं। कौन-सी ऐसी बात है जो रुद्राक्ष से सिद्ध नहीं हो सकती। रुद्राक्ष के विषय में जिन संहिताओं और पुराणों में वर्णन उपलब्ध होता है उनके अनुसार तो यह स्वयं परमेश्वर महेश्वर और कल्पवृक्ष से किसी भी रूप में कम नहीं ठहरता। मनुष्य की तीनों एषणायें (प्राण एषणा, लोक एषणा और धन एषणा) को पूर्ण करने की क्षमता इसमें बतायी गई है। चारों पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को देने में यह समर्थ है। स्वास्थ्य, आयुष्य, मेधा, शक्ति, सुन्दर स्वरूप, ऋद्धि-सिद्धि से लेकर धन, पुत्र और परम पद की प्राप्ति तक की इससे होती बतायी गई है। आठों सिद्धि व नवों निधियों का सुख रुद्राक्ष के सेवन धारण से प्राप्त है। इस विषय में लोगों के मुखों से भी भिन्न-भिन्न अनुभव और प्रशस्ति सुनने को मिलती है, शास्त्रों में पढ़ने को मिलती है। रुद्राक्ष की अपरिमित माँग और बहुमूल्यता भी इसके महत्व में चार चाँद लगाती है। इसके भिन्न-भिन्न प्रकारों या जातियों का अलग-अलग महत्त्व है। जो क्रमशः आगे वर्णित किया जायगा। इस अवसर पर लोगों द्वारा सुने गये एक रोचक वृत लिख देना अनुपयुक्त नहीं होगा।

एक सज्जन के विषय में बताया गया कि उन्हें गलित कुष्ठ हो गया था (चूंकि वे सज्जन अभी जीवित हैं और लेखक ने नाम उल्लेख न करने का वचन दिया है इसलिए घटना सत्य होते हुए भी पाठक इसके विवरण की छान-बीन न करें इसलिए नामोल्लेख नहीं किया जा

रहा है ।) रोग की प्रारम्भिक अवस्था में उनके हाथ पाँव की उंगलियाँ विकृत होने लगीं । चिकित्सा यथासम्भव उन्होंने प्रारम्भ की । किन्तु लाभ होने के बजाय हानि ही दिखाई पड़ी । उनके शरीर में श्वेत कुष्ठ के भी लक्षण उत्पन्न हो गये । अचानक उन्हें ऋषिकेश में एक दण्डी संन्यासी महात्मा मिले । वह अपने दण्ड आदि त्याग कर परमहंस स्वरूप को ग्रहण करने जा रहे थे । फलतः उन्हें कर्मकाण्ड से स्वयं को मुक्त करना था । उनके पास एक नर्मदेश्वर शिवलिंग तथा एक रुद्राक्ष की सिद्ध माला थी । उन सज्जन को वे कृपावश होकर महात्मा जी ने अपनी वे दोनों वस्तुएँ सौंप दीं, और निर्देश दिया कि बद्री केदारनाथ में जाकर इनका विधिवत् आराधना और जप करो । रुद्राक्ष के जल से स्वयं को अभिषिक्त करना, तप्त कुण्ड में स्नान करना और उक्त माला पर मूल मृत्युञ्जय मन्त्र का जप करना विशेष रूप से निर्दिष्ट किया गया था । छः मास की साधना काल में उनका शरीर बिना किसी औषधोपचार के तप्त काञ्चन के सदृश्य आभावान और स्वस्थ हो गया । वर्तमान ७२-७५ वर्ष की आयु के अन्दर भी लेखक को वह युवा पुरुषों के समान ही सशक्त व स्वस्थ दिखाई पड़े । बताया यह गया कि साधना काल में कितने नियम संयम की आवश्यकता होती थी वह अब कर पाना सम्भव नहीं है । विशेष रूप से सांसारिक प्रपंच में पड़े होने के कारण अन्यथा उससे और भी कई तरह की अन्य लाभों की सम्भावनाएँ दिखाई पड़ती थी ।

इसी तरह से एक अन्य व्यक्ति से सुनने को मिला कि रुद्राक्ष धारण करने से उसका बढ़ा हुआ रक्तचाप ठीक हो गया। एक दूसरे व्यक्ति ने बताया कि उसे घबराहट व अनिद्रा की व्याधि थी। एक स्थानीय चिकित्सक के आधार पर उसने रुद्राक्ष धारण किया तथा रात्रि में सिरहाने में रुद्राक्ष रखना एवं एक रत्ती रुद्राक्ष चूर्ण को शहद के साथ प्रातः सायं सेवन करना प्रारम्भ किया । उसको प्रयोग के दूसरे

दिन से ही लाभ प्रतीत होने लगा। इक्तालिस (४१) दिन के प्रयोग से वह रोग मुक्त हो गया। इसी तरह बहुत सारी घटनाएँ और चमत्कार समाज में सुनने को मिलता है।

आधुनिक अनुसंधान कर्त्ताओं ने इस विषय पर जो कुछ लिखा है उससे उपरोक्त गुणवत्ता की पुष्टि नहीं होती है। लेखक ने भी ऐसे कोई चमत्कार अब तक नहीं देखे हैं। हृदय व मस्तिष्क के रोगों में रुद्राक्ष के प्रयोग की प्रवृत्ति वर्तमान काल में बहुत जोरों पर है। धार्मिक कारणों से भी रुद्राक्ष धारण की प्रवृत्ति बहुत बढ़ी है। लगता है आज के युग के बहुत सारे शौकों, प्रचलनों या Trends में यह सम्मिलित हो गया है। अगर केवल फैशन कहूँ तो शायद इसका अपमान हो। आगे मैंने रुद्राक्ष के किस्मों और जातियों के आधार पर शास्त्र वर्णित मात्र प्रभाव व गुणों का वर्णन किया है। जिन पुस्तकों में जो जैसा लिखा है उसको उसी रूप में बिना उसका स्वरूप परिवर्तन किये अंकित कर दिया है। यद्यपि रुद्राक्ष का वर्णन मेरे द्वारा प्रयुक्त संदर्भ ग्रन्थों के अतिरिक्त भी अनेक प्रकाशित तथा अप्रकाशित पुस्तकों में प्राप्त है। जिनमें से कुछ का प्रामाणिक विवरण मुझे उपलब्ध भी हुआ। परन्तु मैंने उसका प्रयोग न करके उन ग्रन्थों का ही किया है। जिनका प्रभाव और प्रामाणिकता सर्वमान्य है। दूसरा कारण यह भी है कि अनधिकृत विस्तार भी इस विषय का मैं नहीं करना चाहता था। पाठकों को प्रामाणिक सन्दर्भ उपलब्ध हों, विषयनातिविस्तार संक्षिप्त रहे और मुझ अल्पज्ञ का विचार भी ग्रथित हो यही चेष्टा लेखक की रही है।

रुद्राक्ष के दर्शन मात्र से ही जो पुण्य लाभ होता है उससे करोड़ों गुना स्पर्श करने से पुण्य लाभ होता है तथा इससे असंख्य गुना पुण्य लाभ रुद्राक्ष को धारण करने से होता है। यथा—

फलस्य दर्शने पुण्यं स्पर्शात्कोटिगुणं भवेत् ।
शतकोटि गुण्यं पुण्यं धारणाल्लभते नरः ।।

(देवी भागवत्/११ स्कन्ध/अ० ५)

लक्षकोटि से भी सैकड़ों गुना पुण्य का फल रुद्राक्ष को माला से जप करने वाला मनुष्य निःसन्देह प्राप्त करता है। यथा—

लक्षकोटि सहस्त्राणि लक्षकोटिशतानी च ।
जपाच्च लभते नित्यं नात्र कार्या विचारणा ।।

भस्म व रुद्राक्ष को धारण करके जो पुरुष भक्तिपूर्वक शिवजी का पूजन करता है वह निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त करता है।

रुद्राक्षालंकृता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।
रुद्राक्षधारणंकार्यं सर्वश्रयोर्ऽथिभिर्नृभिः ।।२१।।

(देवी भागवत्/११ स्कन्ध/अ० ५)

पुनः,

रुद्राक्ष के नाम लेने मात्र से ही दस गायों का दान करने के बराबर पुण्य का लाभ होता है। रुद्राक्ष के दर्शन और स्पर्शन करने से बीस गाय दान करने के बराबर पुण्य का लाभ होता है तथा रुद्राक्ष को शरीर में धारण करने से इससे प्राप्त पुण्य के बारे में वर्णन ही क्या करना अर्थात् अपरिमित पुण्य का फल मिलता है। यथा—

तेषां नामोच्चारणमात्रेण दश गोदानजं फलं दर्शन ।
स्पर्शनाभ्यां द्विगुणं फल मत उर्ध्वंवक्तुं न शक्नोमि ।।

(वृहज्जावालोपनिषद)

पुनः;

बेर के बराबर का रुद्राक्ष को संसार में सौभाग्य को प्रदान करने वाला कहा गया है। इसी तरह आंवले के फल के बराबर का रुद्राक्ष

अरिष्ट प्रभावों को शान्त करने वाला है, चोटली के फल के समान का रुद्राक्ष सम्पूर्ण अर्थ साधन को देने वाला है अर्थात् जैसे-जैसे रुद्राक्ष का फल छोटा होता है वैसे-वैसे वह अधिक फल देने वाला होता है। अतः ये सभी एक-दूसरे से एक-एक दशांश फल अधिक देने वाला होता है। रुद्राक्ष के धारण करने से पाप का नाश होता है। सम्पूर्ण अर्थ की प्राप्ति होती है। रुद्राक्ष की माला से श्रेष्ठ अन्य कोई माला नहीं है। यथा—

बदरीफलमात्रं च यत्स्यात्किलमहेश्वरि।
तथापिफलदं लोके सुख सौभाग्यवर्द्धनम् ॥१६॥
धात्रीफलसमं यत्स्यात्सर्वारिष्टविनाशनम्।
गुंजयासदृशं यत्स्यात्सर्वार्थफल साधनम् ॥१७॥
यथा यथा लघुः स्याद्वैतथाधिक फलप्रदम्।
एकैकतः फलंप्रोक्तं दशांशैरधिकंबुधैः ॥१८॥
रुद्राक्षधारणं प्रोक्तं पापनाशन हेतवे।

× × ×

रुद्राक्षाः कामदादेविभुक्तिमुक्ति प्रदाः सदा ॥१९-२०-२१॥
(महाशिवपुराणे-विद्येश्वर संहिता/अ० २५/१६-२१)

पुनः;

शिखा में, दोनों हाथों में गले में तथा कानों में जो मनुष्य शिव का भक्त रुद्राक्ष को धारण करता है वह शिवलोक को प्राप्त होता है। यथा—

शिखायां हस्तयोः कण्ठे कर्णयोश्चापि यो नरः।
रुद्राक्षं धारयेद्भक्त्या शैवं लोकमवाप्नुयात् ॥

(पद्मपुराणे)

यदि कुत्ता भी रुद्राक्ष को शरीर में बंधे होने पर मर जाता है तो वह भी रुद्र पद को प्राप्त करता है तो मनुष्यों को क्या कहना। यथा—

रुद्राक्षे देहसंस्थे तु कुक्कुरो म्रियते यदि।
सोऽपि रुद्रपदं याति किं पुनर्मानवागुह॥

(पद्मपुराणे)

दांतों की संख्या में अर्थात् ३२ रुद्राक्ष को गले में २०, मस्तक में दो, कानों में छः छः, दोनों हाथों में बारह बारह, दोनों भुजाओं में बारह बारह, शिखा में एक तथा हृदय प्रदेश में आठ से अधिक सूत्र में पिरो-कर जो व्यक्ति निरन्तर धारण करता है वह व्यक्ति साक्षात् स्वयं नील-कण्ठ अर्थात् भगवान शिव के सदृश हो जाता है। यथा—

रुद्राक्षान्कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशति द्वे
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलगता द्वादशैव।
बाह्वारिन्दोः कलाभिः पृथक गिरि शिखा सूत्रयोरेकमेकं
वक्षस्यष्टाधिकं स्यात्कलयति सततं स स्वयं नीलकण्ठः॥

(स्कन्द पुराणे)

इसी तरह देवी भागवत् में कहा गया है कि—

रुद्राक्षांकण्ठेदेशे दशनपरिमितांमस्तके विशंति द्वे
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव।
वाह्वोरिदोः कलाभिर्नयनयुगकृते त्वेकमेकं शिखाया।
वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः॥१७॥

(देवी भागवत्/११ स्कन्ध/अ० ३)

'देवी भागवत्' में रुद्राक्ष की महत्ता का यहाँ तक वर्णन किया गया है कि जो व्यक्ति रुद्राक्ष धारण किये हुए व्यक्ति के चरणों को

धोकर उस जल को पीता है वह व्यक्ति सभी प्रकार के पापों से मुक्त होकर शिवलोक को प्राप्त होता है। यथा—

रुद्राक्षधारिणः पादौ प्रक्षाल्याऽद्भिः पिबेन्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्त शिवलोके महीयते ॥३३॥

(देवी भागवत्/११ स्कन्ध/अ० ३)

पुनः;

रुद्राक्ष को शिखा में धारण करने से सभी प्रकार के शास्त्रीय तत्व स्मरण होते हैं। दोनों कानों में रुद्राक्ष को धारण करने से ब्रह्मा आदि देवताओं और देवी का प्रिय होता है। यथा—

रुद्राक्षं यच्छिखायां तत्तारतत्त्वमिति स्मरेत्।
कर्णयोरुभयोर्ब्रह्मन्देवं देवीञ्च भावयेत् ॥२१॥

(देवी भागवत्/११ स्कन्ध/अ० ३)

"योगसार २ परिच्छेद" में रुद्राक्ष की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जो मनुष्य रुद्राक्ष के दाने को शिखा में, हाथ में, कण्ठ में तथा कान में धारण करता है वह निश्चय ही शिवलोक को प्राप्त होता है। रुद्राक्ष भी श्रेष्ठ व गुणवान तथा कीर्ति को देने वाला होता है। यथा—

शिखायां हस्तयोः कण्ठे कर्णयोश्चापि यो नरः।
रुद्राक्षं धारयेद्भक्त्या शिवलोक मवाप्नुयात् ॥

(योगसारे २ परिच्छेद)

रुद्राक्ष धारण करने की आवश्यकता

हिन्दू संस्कृति में व धर्म शास्त्रों में रुद्राक्ष के दाने को अत्य-
क महत्ता देने के कारण यहाँ तक कि रुद्राक्ष को साक्षात् शिव के
प की उपमा की मान्यता होने के कारण इसे धार्मिक आदि कार्यों व
दिक अनुष्ठानों के समय धारण करने की आवश्यकता पर बल दिया
या है। कहा गया है कि—

बिना रुद्राक्ष धारण किए जो व्यक्ति वैदिक को तथा जप होम
ादि कर्मों को करता है वह सब व्यर्थ जाता है उसका कुछ भी पुण्य-
ल प्राप्त नहीं होता। यथा—

अरुद्राक्षधरो भूत्वा यद्यत कर्म्म च वैदिकम्।
करोति जपहोमादि तत् सर्व्वं निष्फलं भवेत्॥

(स्कन्द पुराणे)

त:,

कहा गया है कि यदि ध्यान तथा धारण से हीन बुद्धिमान
प्रक्ति भी यदि रुद्राक्ष को धारण करता है तो वह सभी पापों से मुक्त
ोकर वह परमगति को प्राप्त करता है। यथा—

ध्यानधारणहीनोऽपि रुद्राक्षं धारयबुधः।
सर्वपापविनिमुक्त स याति परमां गतिम्॥

(इत्येकादशीतत्त्वम्)

लिङ्गपुराण में कहा गया है कि शिव की पूजा-अर्चना करते
समय रुद्राक्ष का माला धारण करना आवश्यक है। यथा—

शिव पूजायां अस्य माला धारणमावश्यकम्।

(लिङ्ग पुराणे)

क्योंकि बिना भस्म बिना त्रिपुण्ड और बिना रुद्राक्ष की मा धारण किए जो व्यक्ति महादेव की पूजा करता है उसका फल कुछ नहीं मिलता अर्थात् वह पूजा व्यर्थ ही जाती है। यथा—

बिना भस्म त्रिपुण्ड्रेण बिना रुद्राक्षमालया ।
पूजितोऽपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः ॥

(लिङ्ग पुराणे)

रुद्राक्ष को जैसे भी पहना जाये मन्त्र से अभिमन्त्रित करके य बिना अभिमन्त्रित किये, श्रद्धाभाव से या बिना श्रद्धाभाव से, भक्ति या अभक्ति से लज्जा से या बिना लज्जा से अर्थात् जैसे भी चा रूद्राक्ष को जो व्यक्ति धारण करता है वह सभी प्रकार के पापों मुक्त होकर भली प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करता है। यथा—

रुद्राक्षं केवलं वापि यत्र कुत्र महामते ।
समंत्रकं वा मन्त्रेण रहितं भाववर्जितम् ॥३५॥

यो वा को वा नरो भक्त्या धारयेल्लज्जायाऽपि वा ॥
सर्वपाप विनिर्मुक्त सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात् ॥३६॥

(देवी भागवत/११ स्कन्ध/अ० ३)

यदि कोई व्यक्ति स्नान में दान में जप में, होम में वैश्वदेवे मे दवताओं के पूजन में, प्रायश्चित में श्राद्धकर्म में, दीक्षाकाल तथा यदि किसी वैदिक कर्म में कोई व्यक्ति बिना रूद्राक्ष धारण किए इन सब कर्मों को करता है तो वह व्यक्ति मोह से व्याप्त निश्चय ही नरक को गिरता है अर्थात अधोगामी होता है। इसलिए भी इन सब कर्मों को करते समय मनुष्य को रुद्राक्ष धारण करने की आवश्यकता है। यथा—

स्नाने दाने जपे होमे वश्वदेवे सुरार्चने ।
प्रायश्चिते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषतः ॥१३॥

अरुद्राक्ष धरो भूत्वा यत्किञ्चितकर्म वैदिकम् ।
कुर्वन्विप्रस्तु मोहेन नरकेपतति ध्रुवम् ।१४॥
(देवी भागवत/११ स्कन्ध/अ० ५)

इस जन्म-मरण के भवजाल से मुक्ति-प्राप्ति हेतु भी रूद्राक्ष को धारण करना आवश्यक है क्योंकि यदि कोई भी प्राणी यदि किसी भी प्रकार से पूजा-अर्चना जप-तप धर्म-कर्म आदि करना नहीं जानता है तो वह भी प्राणी रुद्राक्ष को धारण किये हुए प्राण त्याग करने पर पुनर्जन्म से मोक्ष की प्राप्ति करता है। उदाहरण के लिए एक बार भगवान ने स्वयं ही स्कन्द जी से कहा है कि हे स्कन्द जी सुनो ! वहुत ही प्राचीन काल में विन्ध्य पर्वत (विन्ध्याचल पर्वत) में एक गदहा रुद्राक्ष के बोझ को ढोता था। रास्ते में थक कर बोझ ढोने में असमर्थ होकर बोझ के साथ ही जमीन पर गिर पड़ा और प्राण को त्याग दिया। अतः त्रिनेत्र वाले हाथ में त्रिशूल रुद्राक्ष को धारण करने वाले महेश्वर के धाम को प्राप्त कर मोक्ष की प्राप्ति की तो मनुष्यों का क्या कहना। यथा—श्री भगवानुवाच—

शृणु पुत्र ! पुरावृतं गर्दभो विन्ध्यपर्वते ।
धत्ते रुद्राक्षभारं तु वाहितः पथिकेन तु ॥२३॥

श्रान्तोऽसमर्थस्तद्भारं वोढुं पतितवान्भुवि ।
प्राणस्त्यक्तस्त्रिनेत्रस्तु शूलपाणि महेश्वरः ॥२४॥
(देवी भागवत/११ स्कन्ध/अ० ६)

विमर्श—रुदाक्ष मूलतः हिन्दुओं की उपासना पद्धति से सम्बन्ध

रखता है। उससे भी शैव और शाक्त सम्प्रदाय में ही इसकी विशेष मान्यता है। हिन्दू यज्ञानुष्ठान और साधना, उपासना पद्धति, अनुशासन बद्ध, आगम-निगम सम्मत तथा मीमांसा से गठित है। अनेक प्रकार के उपासना एवं अनुष्ठान पद्धतियाँ होने के बावजूद भी उनकी अपनी एक निश्चित पद्धति है, निश्चित क्रिया काण्ड है। उनमें व्यक्तिक्रम होने से यज्ञानुष्ठान, पूजा उपासना खण्डित समझी जाती है। कुछ चीजें तो बहुत ही आवश्यक मानी गई हैं जो अनिवार्यता की सीमा भी लांघी गई है। इस विधि से जिस तरह शास्त्रानुसार बिना शिखासूत्र के द्विजाति की कल्पना नहीं हो सकती उसी तरह बिना रुद्राक्ष धारण के शैव शाक्त की कल्पना नहीं होती। भारत में यद्यपि अनेक सम्प्रदाय साधना पद्धतियाँ प्रचलित हैं। तथापि सनातनी हिन्दू धर्मावलम्बी वैष्णव, शैव तथा शाक्त रूप में ही ज्यादातर बंटे हुए हैं। वैष्णव के लिए छापा तिलक जरूरी है। तुलसी का वहाँ बहुत महत्त्व है। शैव्यों में रुद्राक्ष व त्रिपुण्ड का तथा शाक्त में रुद्राक्ष व बिन्दु का बहुत महत्त्व है। इन समुदायों के फिर कई अलग-अलग साधना पद्धतियाँ और उपसम्प्रदाय आदि हैं। जिस तरह बिना कुशा के श्राद्ध आदि कर्म निष्पन्न नहीं होते, बिना गायत्री, यज्ञोपवीत और शिखा के ब्राह्मण शुद्ध नहीं होता उसी तरह बिना रुद्राक्ष के किसी शैव्य शाक्त के धर्मानुष्ठान की सिद्धि नहीं होती। उसके लिए यह अनिवार्यता की सीमा तक आवश्यक बताया गया है। यह पवित्री भी है और प्रतीक भी। रुद्राक्ष के गुण धर्म से कुछ न चाहने वाला व्यक्ति भी यदि शैवोपासना से सम्बद्ध है या शैव समुदाय का सदस्य है तो उसे पवित्री रूप में त्रिपुण्ड और रुद्राक्ष धारण करना आवश्यक है। यह उसके लिए शैव होने का प्रतीक चिन्ह भी है। गले में तुलसी की माला हो माथे पर उर्ध्वपुण्ड तिलक हो तो देखते ही समझ में आता है कि समक्ष कोई वैष्णव है। शरीर पर रुद्राक्ष रहे और माथे पर

त्रिपुण्ड रहे तो वह निश्चय ही शैव होगा। ललाट पर बिन्दु है, शरीर पर रुद्राक्ष है तो वह अवश्य कोई शाक्त है ऐसा प्रतीत होता है। ऐसे ही अन्यान्य और भी समुदाय है जैसे पञ्चदेवोपासक आदि। इनके शरीर पर रुद्राक्ष देखकर उनके उपासना पद्धति या इष्ट का बोध होता है अतः यह कहा जा सकता है कि शास्त्रानुसार धर्मानुष्ठान के लिए आवश्यकता ही नहीं अपितु अनिवार्यता भी है।

धर्मानुष्ठान के अतिरिक्त अब लोग शुद्ध स्वास्थ्य की दृष्टि से भी रुद्राक्ष धारण करने लगे हैं। शोभा सौन्दर्य की दृष्टि से भी लोगों ने रुद्राक्ष पहनना प्रारम्भ किया है। जिस समाज में आप रहते हैं उसके रुचि, रंग-रूप में ढलकर रहने से ही एकात्मकता का बोध होता है। कहा भी है—"जैसा देश वैसा भेष।" "आप रुचि भोजन, आप रुचि श्रृंगार" की कहावत भी प्रसिद्ध है। अतः सामाजिक चलन, स्वास्थ्य और धर्मानुष्ठान सबको देखते हुए रुद्राक्ष धारण करना अब आवश्यक हो गया है।

रुद्राक्ष धारण करने का अधिकार

जैसा कि मैंने पहले भी लिखा है कि भारतीय मनीषा की एक अपनी ही विचार सारिणी है कार्य प्रणाली है। कोई विषय क्यों न हो हमारे यहाँ "देश काले च पात्रे च" का विचार अनिवार्यतः किया जाता। दान देना है तो कहाँ कब व किसको देना है। यदि शिक्षा देनी है तो कहाँ किसको देनी है। कोई भी कार्य करना है तो कहाँ, कब, क्यों या कहाँ, कब, कैसे का विचार बहुत आवश्यक है। भारतीय विचार धारा, ज्ञान-विज्ञान को; कला और साहित्य को कारखाना एवं उत्पादन के रूप में ढालने के विरुद्ध है। भारतीय विचारधारा कहने से मेरा तात्पर्य विशेषतः प्राचीन विचारधारा की ओर है। उन कुछ लोगों और प्रयोगों की ओर नहीं है जो अर्वाचीन यूरोपीय अन्धानुकरण के हिमायती हैं। यह प्रमाणित हो गया है कि स्कूली शिक्षा हमारे यहाँ निष्फल प्रमाणित हो रही है। अस्तु उक्त विषय पर विचार करने से एक अलग ही ग्रन्थ हो जायगा। हम यहाँ केवल यह कहना चाहते हैं कि पात्रता का विचार करना सर्वथा वैज्ञानिक एवं उपयुक्त है भले ही वह प्राचीन परिपाटी के अनुसार ही क्यों न हो। जो व्यक्ति जिस वस्तु को ग्रहण करने के योग्य नहीं है पात्र नहीं है वह वस्तु या विषय उसके लिए या वह व्यक्ति उस वस्तु व विषय के लिए लाभकारी सिद्ध नहीं हो पायेंगे। पात्रता ही अधिकार का सृजन करती है। जो व्यक्ति जिस वस्तु का पात्र है उसे वह सेवा अवश्य ही मिलनी चाहिए। इस तरह से उक्त वस्तु को ग्रहण करने का उसका नैसर्गिक अधिकार हो जाता है। जब कभी किसी व्यक्ति को अपनी अधिकारों व योग्यता का बोध नहीं होता तो शास्त्र एवं आप्त-पुरुष उसे उसकी अधिकार व

त्रता का बोध कराते हैं। इसलिए यह नियम सा बना हुआ है कि व भी कोई ग्रन्थ किसी विषय पर लिखा जा रहा हो तो उस विषय अधिकारी या पात्र के विषय में अवश्य ही उसके द्वारा निर्देश किया ाता है।

दर्शन शास्त्रों में उक्त ज्ञान को प्राप्त करने के अधिकारी पात्रों के क्षण आदि का उल्लेख किया गया है। आयुर्वेद में वैद्य की विद्या के ाप्ति के पात्रों का विचार हुआ है। मणि-रत्न आदि से लेकर मन्त्र था औषधियों के धारण करने योग्य अधिकारी पात्रों का उल्लेख द्तद् विषयक ग्रन्थों में देखने को मिलता है। यहाँ तक कि वेश-भूषा ौर श्रृंगार के सम्बन्ध में भी पात्रता का विचार किया जाता है जो ाज के युग में भी बहु-प्रचलित है। इसलिये संहिता ग्रन्थों ने रुद्राक्ष ारण करने के पात्रों का अवश्य विचार किया होगा। किन्तु वस्तु रक अथवा व्यक्ति परक पात्रता पर विशद विवरण अथवा कहिये क सन्तोषजनक विवरण लेखक को प्राप्त न हो सका। रुद्राक्ष को र्वप्रिय बनाने के प्रयास में अथवा उसकी महत्ता को सर्वोच्च प्रदर्शित रने के उत्साह में ग्रन्थकारों ने उसे सभी लोगों के धारण के योग्य हा है। यद्यपि आज भी विचार धारा के वह अनुरूप ही है। स्त्री-ुरुष, बाल-वृद्ध, ब्राह्मण से शूद्र तक को वेद गायत्री, यज्ञोपवीत और भगवत् पूजन का अधिकार आधुनिक विचारधारा के अनुसार मान्यता प्राप्त हो गया है। तो फिर रुद्राक्ष सबके द्वारा धारण आदि यदि प्राचीन कहा गया तो अर्वाचीन लोग उसकी प्रशंसा ही करते हैं। अतः इसी समय में और कुछ न लिखकर पुराण व संहिताओं में प्राप्य विषय को प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सम्पूर्ण आश्रमों वर्णो (जातियों) के स्त्रियों व शूद्रों को भी परम पिता परमेश्वर महेश्वर भगवान शिवजी की आज्ञा से सदा रुद्राक्ष धारण करने का अधिकार है पुरुषों को तो है ही। तथा रुद्राक्ष धारण

कर पञ्चाक्षर मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' का जप करना चाहिए।

(शिव महापुर

जाति भेद के अनुसार श्वेत वर्ण रुद्राक्ष ब्राह्मण को, लाल रुद्राक्ष क्षत्रिय को; पीतवर्ण रुद्राक्ष वैश्यों को तथा कृष्ण वर्ण का रुद्र शूद्रों को पहनना चाहिए। (विद्येश्वर संहिता/अ० २५/श्लोक ४४)

देवी भागवत् में भी सभी आश्रमों व वर्णों को रुद्राक्ष धारण क के लिये कहा गया है। यथा—

सर्वाश्रमाणां वर्णानां रुद्राक्षार्णां च धारणम्।
कर्त्तव्यं मन्त्रतः प्रोक्तं द्विजानां नाऽन्यवर्णिनाम्।।२३।।

(देवी भागवत्/११ स्कन्ध/अ०

पुनः;

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया।
वृक्षा जाताः पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः।।८।।
श्वेतास्तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः।
पीता वैश्यास्तु विज्ञेयाः कृष्णाः शूद्राः प्रकीर्तिताः।।९।।
ब्राह्मणो बिभृयाच्छ्वेतान्रक्तान्राजा तु धारयेत्।
पीतान्वैश्यस्तु बिभृयात्कृष्णाञ्छूद्रस्तु धारयेत्।।१०।।

(देवी भागवत्/११ स्कन्ध/अ० ७

अर्थात् पृथ्वी से शुभाक्ष का वृक्ष जो उत्पन्न होता है वह प्रारम्भ से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति का होता है। ब्राह्मण को श्वेत रुद्राक्ष, क्षत्रिय को रक्त रुद्राक्ष, वैश्य को पीत रुद्राक्ष व शूद्र को कृष्ण वर्ण का रुद्राक्ष धारण करना चाहिये।

रुद्राक्ष धारण विधि

रुद्राक्ष धारण करने का एक नियत विधान है जैसे अधिक से अधिक कितना रुद्राक्ष धारण करना चाहिये ? तथा किन-किन अंगों में कितना धारण करना चाहिये । जो निम्न प्रकार है—

महाशिवपुराण के अनुसार

प्रथम विधि—अधिकतम ११०० रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। ११०० रुद्राक्ष धारण करने वाला व्यक्ति साक्षात् रुद्र रूप होता है ।

५५० रुद्राक्षों को भक्तिपूर्वक मुकुट बनाकर जो व्यक्ति धारण करता है वह व्यक्ति भक्तिवान तथा श्रेष्ठ पुरुष होता है ।

३६० रुद्राक्षों को माला बनाकर तीन लड़ी करके यज्ञोपवीत बना कर धारण करे तथा शिखा में तीन, दोनों कानों में छः छः, कण्ठ में एक सौ एक, बाहों में ग्यारह-ग्यारह, कर्पूर और मणिबन्ध में भी ग्यारह-ग्यारह इस रूप में जो व्यक्ति रुद्राक्ष धारण करता है उसका रूप शिव के समान होता है । यह ११०० रुद्राक्ष धारण करने की विधि का वर्णन किया गया है । (विद्येश्वर संहिता १/अ० २५/श्लोक/२४-३२ तक)

इसके अभाव में दूसरी विधि भी कही गई है जो इस प्रकार है—

दूसरी विधि—इस विधि के अनुसार शिखा में एक रुद्राक्ष, शिर में ३० रुद्राक्ष, गले में ५० रुद्राक्ष, दोनों भुजाओं में १६-१६ रुद्राक्ष, मणिवन्ध में १२ रुद्राक्ष, स्कन्ध में ५०० रुद्राक्ष, यज्ञोपवीत के रूप में १०८ रुद्राक्ष पहने। इस प्रकार ११०० रुद्राक्ष को धारण करने वाला व्यक्ति रुद्र के समान तथा सभी देवताओं का वन्दनीय होता है ।

(विद्येश्वर संहिता १/अ० २५/श्लोक ३४-३६)

पुनः कहा गया है कि शिखा में एक रुद्राक्ष, मस्तक में ४० रुद्राक्ष, कण्ठ में ३२ रुद्राक्ष, हृदय प्रदेश पर १०८ रुद्राक्ष, दोनों कानों में ६-६

रुद्राक्ष, भुजाओं में १६-१६ रुद्राक्ष तथा हाथ में बारह-बारह रुद्राक्ष अथवा २४-२४ रुद्राक्षों को जो व्यक्ति प्रेम से धारण किया हुआ हो वह भी तथा जो शिव का भक्त हो वह भी निरन्तर पूजनीय है।

(विद्येश्वर संहिता १/अ० २५/श्लोक ३७-३९)

सिर से रुद्राक्ष ईशान मंत्र से यथा—"ॐ **ईशानः सर्वविद्यानामीश्वर सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवोमेऽस्तु सदाशिवोम, सुमेरूणा**" से अभिमन्त्रित कर धारण करना चाहिये। कानों में तत्पुरुष मन्त्र यथा—"ॐ **तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नोरूद्रः प्रचोदयात्**" से अभिमन्त्रित कर धारण करना चाहिये। गले और हृदय में अघोर मंत्र यथा—"ॐ **अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर घोर तरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्व सर्वभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्रः रुपेभ्यः।**" मन्त्र से अभिमन्त्रित कर धारण करना चाहिये। हाथों में अघोर व बीज मन्त्र से यथा (अघोर मन्त्र ऊपर दिया है) बीज मंत्र—(१) ॐ **ज्योतिर्मयाय शिवाय नमः**। या (२) 'ॐ **नमः शिवाय**' से अभिमन्त्रित कर रुद्राक्ष को धारण करना चाहिये। उदर में पन्द्रह रुद्राक्ष वामदेव मन्त्र से यथा—"ॐ **वामदेवाय नमो ज्येष्ठ्याय नमः। श्रेष्ठाय नमः। रुद्राय नमः। कालाय नमः। कल विकरणाय नमः** मन्त्र से अभिमन्त्रित कर धारण करना चाहिये। अथवा मूलमन्त्र यथा—"ॐ **तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नोरुद्रः प्रचोदयात्**" मन्त्र से अभिमन्त्रित कर सभी रुद्राक्ष को धारण करना चाहिए। मूलमन्त्र को शिव गायत्री भी कहते हैं। (विद्येश्वर संहिता १/अ० २५/श्लोक ४०-४७)

रुद्राक्ष की माला धारण करने के लिये रुद्राक्ष को धागे में गूंथ कर माला तैयार करने के बाद पञ्चामृत और पंचगव्य को मिलाकर माला को स्नान करना चाहिये और प्रतिष्ठा के समय "ॐ नमः शिवाय" इस पंचाक्षर मन्त्र को पढ़ना चाहिये। यथा—

पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नान काले प्रयोजयेत्।
रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मंत्र पञ्चाक्षरस्तथा॥

उसके बाद माला को सुगन्धित जल से धोना चाहिए। फिर पञ्चगव्य से स्नान कराना चाहिए। पुनः गंगाजल से शुद्ध स्नान करा कर उसमें मूल मंत्र का न्यास करना चाहिये। यथा—

प्रक्षाल्य गंधतोयेन पञ्चगव्येन चोपरि।
ततः शिवाम्भसा क्षाल्य मूलमंत्रैः ततोन्यसेत् ॥

फिर शुद्ध भूमि में रखकर मूलमन्त्र का उच्चारण करता हुआ चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप-दीप आदि से माला का पूजन करना चाहिये। यथा—

पश्चाद्धि पूज्येत्तां हि गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य शुद्ध भूमौ निधाय च ॥

त्र्यम्बकादिक मन्त्रों से प्रतिष्ठा करे या "ॐ अघोरः ओं ह्रीं ओं अघोरतरः ओं ह्रौं ह्रां नमस्ते रुद्राक्ष रूप ह्वैं स्वाहा।" इस मंत्र से प्रतिष्ठा करके माला को धारण करना चाहिये। यथा—

त्र्यम्बकादिकमन्त्रं च तथा तत्र प्रयोजयेत्।

यद्वा ॐ अघोरः ॐ ह्रीं अघोरतरः ओं ह्रौं ह्रां नमस्ते रुद्र रूप ह्वैं स्वाहा अनेनाभिमंत्र्य धारयेत्।

योगसार के परिच्छेद दो में रुद्राक्ष धारण करने के विषय में कहा गया है कि शिखा में दस, गले में २५, कानों में पाँच-पाँच, हृदय प्रदेश में एक सौ आठ, नाभि में सात रुद्राक्षों को जो व्यक्ति धारण करता है वह प्राणी मोक्ष की प्राप्ति करता है। यथा—

शिखायां दशकं धार्यं कण्ठे च पञ्चविंशतिम्।
कर्णयोः पञ्च संपृत्या हृदि चाष्टोत्तरं शतम् ॥
नाभौ सप्त च रुद्राक्षं धारणान्मोक्षभागभवेत् ॥

(इति योग सारे २ परिच्छेद)

देवी भागवत् में रुद्राक्ष के सम्बन्ध में कहा गया है कि रुद्राक्ष को धारण करने वाला व्यक्ति सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। रुद्राक्ष धारण करने के समान पुण्य कोई दूसरा पुण्य कर्म नहीं है। मुनिगण व तत्वदर्शी लोग कहते हैं कि रुद्राक्ष धारण करना एक महान व्रत है इसलिए धृतव्रती को एक हजार रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। उस सहस्त्र रुद्राक्षधारी व्यक्ति को सभी देवतागण रुद्र स्वरूप समझकर नमस्कार करते हैं। एक हजार रुद्राक्ष के अभाव में दोनों भुजाओं में सोलह सोलह रुद्राक्ष, शिखा में एक रुद्राक्ष, दोनों हाथों में बारह बारह रुद्राक्ष, गले में बत्तीस रुद्राक्ष, मस्तक में चौबीस रुद्राक्ष, दोनों कानों में छः छः रुद्राक्ष, छाती पर एक सौ आठ रुद्राक्ष जो व्यक्ति धारण करता है वह रुद्र के समान पूजनीय होता है। यथा—

रुद्राक्षान्धारयेद्यस्तु मुच्यते सर्वपातकैः।
रुद्राक्षधारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत् ॥२८॥
महाव्रतमिदं प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः।
सहस्त्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः ॥२९॥
तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः।
अभावे तु सहस्त्रस्य बाह्वोः षोडशषोडश ॥३०॥
एकं शिखायां करयोर्द्वादश द्वादशैव तु।
द्वात्रिंशत्कण्ठदेशेतु चत्वारिंशच्च मस्तके ॥३१॥
एकैकं कर्णयोः षट् षट् वक्षस्यष्टोत्तर शतम्।
यो धारयति रुद्राक्षान्रुद्रवत् स तु पुज्यते ॥३२॥

(देवी भागवत्/११ स्कन्ध/अध्याय ६)

मन्त्र के बिना अभिमन्त्रित किये रुद्राक्ष का धारण निषेध

बिना मन्त्र से अभिमन्त्रित किये रुद्राक्ष को धारण नहीं करना चाहिये। बिना अभिमन्त्रित के रुद्राक्ष पहनने वाला व्यक्ति एक कल्प वर्ष तक पापी बनकर नरक में पड़ा रहता है। यथा—

बिना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षभुविमानवः।
सयाति नरक घोर पापादिन्द्राश्चतुर्दश।८३॥

(विद्येश्वर सं० १/अध्याय २५)

"पद्म पुराण" में भी वर्णन आया है कि बिना मन्त्र से अभिमन्त्रित किये रुद्राक्ष पहनने वाला व्यक्ति घोर नरकगामी होता है।

(इति तन्त्र सारः)

मुख भेद से रुद्राक्ष का वर्णन

रुद्राक्ष के दाने पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक काँटों के बीच एक स्पष्ट सीधी रेखा दिखाई देने वाली होती है। इस रेखा को ही रुद्राक्ष का मुख कहते हैं। यह मुख किसी दाने पर एक, किसी पर दो, किसी पर तीन, किसी पर चार, किसी पर पाँच, किसी पर छः, किसी पर सात, किसी पर आठ, किसी पर नव, किसी पर दस, किसी पर ग्यारह किसी पर बारह किसी पर तेरह तथा किसी पर चौदह होता है अतः जिस दाने पर जितनी रेखायें होती हैं। वह उतने ही मुखवाला रुद्राक्ष कहा जाता है। यथा—

एक द्वित्रिश्चतुः पंचषट्सप्त वसवो नव।
दशैकादश, द्वादश त्रयोदश, चतुर्दश ॥५६॥
एतेषां तु मुखानां तु देवता कोत्रशंकर।
गुणं च कीदृशं तेषां कथयस्व यथार्थतः ॥५७॥

(स्कन्द पुराणे)

कार्तिकेय जी द्वारा भगवान शंकर के रुद्राक्षों के गुण भेद पूछने पर शंकर जी ने रुद्राक्ष के गुणों को निम्न प्रकार वर्णन किया है। यथा—

एकवक्त्रः शिव साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
द्विवक्त्रौ[1] देवदेव्यौ च गोवधंनाशयेद्ध्रुवम् ॥
त्रिवक्त्रो दहन[2]: साक्षाद्भ्रूणहत्यां व्यपोहति।
चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥

---

1. मंतातरे हरगौर्याविति पाठः। 2. पद्मपुराणे-त्रिवक्त्रोग्निस्त्रिजन्मोक्ष पापराशि प्रणाशयेदिति पाठः।

पञ्चवक्त्रः[3] स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नाम नामतः ।
षड्वक्त्र कार्तिकेयस्तु धारयेद्दक्षिणे भुजे ॥
ब्रह्महत्यादिभिः[4] पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।
सप्तवक्त्रो महासेनो ह्यनंतो नाम नागराट् ॥
गुरुतल्पादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।
अष्टवक्त्रो महासेनो साक्षाद्देवो विनायकः ॥
पृष्ठोदरकरेणापि संस्पृशेद्वा गुरुस्त्रियम् ।
एवमादीनि पापानि चातिपापानि सर्वशः ॥
विघ्नास्तस्य च नश्यन्ति मुक्तोयातिपरांगतिम् ।
गुणा ह्येतेषु सर्वेषु अष्टवक्त्रेषु धारणात् ॥
नववक्त्रो भैरवः स्याद्धारयेद्वामके भुजे ।
कपिलो[5] मुक्तिदः प्रोक्तोमम् तुल्यबलो भवेत् ॥
लक्षकोटि सहस्त्राणि ब्रह्महत्यां करोतियः ।
तत्सर्वं दहते शीघ्रं नववक्त्रस्य धारणात् ॥
दशवक्त्रो महासेनो साक्षाद्देवो जनार्द्दनः ।
ग्रहाश्चैव पिशचाश्च वैताला ब्रह्म राक्षसः ॥
पन्नगाश्च विनश्यंति दशवक्त्रस्य धारणात् ।
वक्त्रैकादशरुद्राक्षो रुद्र एकादशः स्मृतः ॥
शिखायां धारयेन्नित्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ।
अश्वमेध सहस्त्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥
हेम शृङ्गस्य लक्षस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ।
तत्फलंसमवाप्नोति रुद्रैकादश धारणात् ॥

---

3. पद्मपुराणे-पंचवक्त्रस्तु कालाग्निरगम्याभक्ष्यपापनुत ॥ इति-पाठः ॥ 4. पद्मपुराणे—गर्भहत्यां व्यपोहतिति पाठः । 5. पद्मपुराणे—शिवसायुज्य कारकः ।

रुद्राक्ष द्वादशाक्षस्य कण्ठदेशे च धारणात् ।
आदित्यस्तुष्यते[6] नित्यं द्वादशार्कं व्यवस्थित: ।।
त्रयोदशमुख: काम: सर्वकामफलप्रद: ।
चतुर्दशास्य: श्रीकण्ठो वंशोधारकर: पर: ।।

अर्थात् एक मुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव तुल्य है इसके धारण करने से ब्रह्महत्या का दोष दूर होता है। दो मुखी रुद्राक्ष देव और देवी (हर अर्थात् शिव व गौरी) स्वरूप है। इसके धारण करने से गोहत्या का पाप नष्ट होता है। तीन मुखी रुद्राक्ष साक्षात् अग्नि स्वरूप है जो कि भ्रूण हत्या को दूर करता है। चार मुखी रुद्राक्ष स्वयं ब्रह्मास्वरूप है जो ब्रह्म हत्या को दूर करता है। पाँच मुखी रुद्राक्ष स्वयं रुद्र है जो कि कालाग्नि नाम से जाना जाता है। छ: मुखी रुद्राक्ष देव कार्तिकेय हैं जिसे दक्षिण हाथ में धारण करना चाहिये। इसके धारण करने से हत्या आदि पापों से मुक्ति मिलती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। सात मुखी रुद्राक्ष महासेन अनन्त नाम नागराट् के समान है जो कि बड़े-बड़े पापों से मुक्ति दिलाता है इसमें जरा भी सन्देह नहीं करना चाहिये। आठ मुखी रुद्राक्ष महासेन साक्षात् देव विनायक (गणेश) स्वरूप है इसके धारण करने से यदि गुरु की पत्नी का पीठ व उदर दोनों स्पर्श हो जाये तो इस प्रकार के सभी पापों को नष्ट करता है। आठ मुखी रुद्राक्ष के धारण करने से सभी विघ्न बाधा दूर होते हैं तथा प्राणी मोक्ष को प्राप्त कर परमगति को जाता है अत: इसमें सभी प्रकार के गुण विद्यमान होने से इसे धारण करना चाहिये। नव मुखी रुद्राक्ष साक्षात् भैरव स्वरूप है इसे बायें बाजू में धारण करना चाहिये। नवमुखी रुद्राक्ष को धारण करने से प्राणी मुक्ति को प्राप्त कर शिव लोक को जाता है तथा शिव के ही समान बलशाली होता है। इसके धारण करने से लाखों करोड़ों ब्रह्महत्या के पापों को दूर करता है। दश मुखी रुद्राक्ष साक्षात्

---

6. पद्मपुराणे—द्वादशाख्यो भवेदर्क: इतिपाठ: ।

देव जनार्दन स्वरूप है। इसके धारण करने से सभी प्रकार के दुष्ट ग्रहों पिशाचों, बैतालों, ब्रह्मराक्षसों के प्रभाव तथा विषैले सर्प विषों को नष्ट करता है। ग्यारह मुखी रुद्राक्ष साक्षात् एकादश रुद्र स्वरूप है इसके शिखा में धारण करने से हजारों अश्वमेध यज्ञों, सैकड़ों बाजपेय यज्ञ करने तथा लाखों हेमश्रृंग के दान करने के बराबर फल मिलता है। बारह मुखी रुद्राक्ष को कण्ठ में धारण करना चाहिए तथा यह द्वादशार्क सूर्य के समान होता है। तेरह मुखी रुद्राक्ष कामदेव स्वरूप है इसके धारण करने से सभी प्रकार की मनोकामना पूरी होती है। चौदह मुखी रुद्राक्ष साक्षात् श्रीकण्ठ स्वरूप है जिसके धारण करने से वंशोद्धार होता है।

(स्कन्द पुराणे)

'महाशिव पुराण' के अनुसार मुखभेद से रुद्राक्ष का यह वर्णन किया जा रहा है। जो निम्न प्रकार है—

१. एक मुखी रुद्राक्ष साक्षात् भुक्ति-मुक्ति को देने वाला है, यह शिव स्वरूप है तथा इसके दर्शन मात्र से ब्रह्महत्या नष्ट होती है। यथा--

एक वक्त्रः शिवः साक्षाद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः।
तस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥६४॥

जहाँ एक मुखी रुद्राक्ष की पूजा होती है वहाँ लक्ष्मी सदा निवास करती है तथा सभी प्रकार के उपद्रव शान्त होकर सब कामना सिद्ध होती है।

२. दो मुखी रुद्राक्ष देव देवेश है इसके धारण करने से सभी प्रकार के कामों को सिद्ध करने वाला और पुण्य फल को देने वाला है। विशेषकर यह गोहत्या दोष को दूर करता है। यथा—

द्विवक्त्रो देवदेवेशस्सर्वकामफलप्रदः।
विशेषतः स रुद्राक्षो गोवधंनाशयेद्द्रुतम्॥६६॥

३. तीन मुखी रुद्राक्ष सदा साधन देने वाला है तथा उसके प्रभा से सभी प्रकार की विद्यायें प्रतिष्ठित होती हैं। यथा—

त्रिवक्त्रोयोहिरुद्राक्षः साक्षात् साधनदस्सदा।
तत्प्रभावाद्भवे युर्वैविद्याः सर्वाः प्रतिष्ठिता ॥६७॥

४. चार मुखी रुद्राक्ष ब्रह्मा स्वरूप है यह नर हत्या को दूर करने वाला है। इसके दर्शन स्पर्शन से चारों वर्ग के फल को देने वाला है। यथा—

चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मानरहत्यां व्यपोहति।
दर्शनात्स्पर्शनात्सद्यश्चतुर्वर्गफल प्रदः ॥६८॥

५. पाँच मुखी रुद्राक्ष स्वयं रुद्र रूप है तथा उसी का नाम कालाग्नि है। यह सभी प्रकार के सांसारिक बन्धनों से मुक्त करता है तथा सभी प्रकार के फलों को देने वाला है। यथा—

पंचवक्त्रः स्वय रुद्रः कालाग्निर्नामितः प्रभुः।
सर्वमुक्ति प्रदश्चैव सर्वकामफल प्रदः ॥६९॥

तथा पंचमुखी रुद्राक्ष अगम्या में गमन करने अभक्ष्य भक्षण करने आदि दुष्कर्मों से जो पाप होता है उन सभी प्रकार के पापों को नष्ट करता है। ॥७०॥

६. छः मुखी रुद्राक्ष कार्तिकेय स्वरूप है इसे दक्षिण भुजा में धारण करना चाहिये। इसके धारण करने से प्राणी निःसन्देह ब्रह्महत्या आदि ऐसे पापों से मुक्त हो जाता है।

षड्वक्त्रः कार्तिकेयस्तु धारणाद्दक्षिणे भुजे।
ब्रह्महत्यादिकैः पापैर्मुच्यते नात्रसंशयः ॥७१॥

७. शंकर जी पार्वती जी से कहते हैं कि हे पार्वती सात मुखी रुद्राक्ष अनंग होता है इसे धारण करने से दरिद्र भी ईश्वर तुल्य हो जाता है ॥७२॥

८. आठ मुखी रुद्राक्ष वसुमूर्ति भैरव है उसके धारण से आयु पूर्ण होती है तथा शरीर के अन्त होने पर शिव रूप होता है ॥७३॥

९. नव मुखी रुद्राक्ष भैरव और कपिल मुनि है या उसकी अधिष्ठात्री देवता दुर्गा महेश्वरी है। नवमुखी रुद्राक्ष को प्रेमपूर्वक भक्ति में तत्पर होकर वायीं भुजा में धारण करना चाहिये। वह सर्वेश्वर तथा मेरी तुल्य वह नि:सन्देह हो जाता है ॥७४-७५॥

१०. दस मुखी रुद्राक्ष हे देवी ! स्वयं जनार्दन है। अतः इसे धारण करने से सभी प्रकार की मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं ॥७६॥

११. ग्यारह मुखी रुद्राक्ष धारण करने से रुद्र रूपी हो सवत्र मनुष्य विजय प्राप्त करता है। यथा—

एकादश मुखोयस्तु रुद्राक्षः परमेश्वरी।
स रुद्रोधारणात्तस्य सर्वत्र विजयी भवेत् ॥७७॥

१२. बारह मुखी रुद्राक्ष को केश में अर्थात् शिखा में धारण करने से वह साक्षात् १२ आदित्य के समान हो जाता है ॥७८॥

१३. तेरह मुखी रुद्राक्ष धारण करने से प्राणी विश्वदेव के समान हो जाता है। इसको धारण किया हुआ व्यक्ति सब कामना को प्राप्त हो सौभाग्य और मंगल को प्राप्त करता है।

१४. चौदहमुखी रुद्राक्ष परम शिव रूप होता है इसको भक्तिपूर्वक माथे में धारण करने से मनुष्य सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। यथा—

चतुर्दशमुखोयोहि रुद्राक्षः परमशिवः।
धारयेन्मूर्द्धिन्तं भक्त्यासर्वपापं प्रणश्यति ॥८०॥

× × × ×

'देवी भागवत् पुराण' के अनुसार मुख भेद से रुद्राक्ष के तीन गुण निम्न प्रकार से वर्णन किया गया है—

एकवक्त्रः शिवः साक्षाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
द्विवक्त्रो देवदेव्यौस्याद्विविधं नाशयेदधम् ।।१२।।

त्रिवक्त्रः स्त्वनलः साक्षात्स्त्रीहत्यां दहति क्षणात् ।
चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति ।।१३।।

पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नाम नामतः ।
अभक्ष्यभक्षणोद्भूतैरगम्यागमनोद्भवैः ।।१४।।

मुच्यते सर्वपापैस्तुपञ्चवक्त्रस्यधारणात् ।
षड्वक्त्रः कार्त्तिकेयस्तु सधार्योदक्षिणेकरे ।।१५।।

× × × ×
× × × ×
× × × ×

मुच्यते सर्वपापेभ्यो धारणात्तस्य षण्मुख ।'
चतुर्दशास्योरुद्राक्षोयदि लभ्येतपुत्रक ।।३४।।

धारयेत्सततं मूर्ध्न तस्य पिण्डः शिवस्य तु ।
किं मुनु बहुनोक्तेनवणनेन पुनः पुनः ।।३५।।

पूज्यते सततं देवै प्राप्यते च परा गतिः ।
रुद्राक्षएकः शिरसाधार्योभक्त्यादिजोत्तमैः ।।३६।।

अर्थात् एक मुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव है जो कि ब्रह्महत्या को दूर करता है। दो मुखी रुद्राक्ष देव देवी है जो कि हत्यादि पापों को नाश करता है। तीन मुखी रुद्राक्ष साक्षात् अनल स्वरूप है जो कि स्त्री-हत्या के दोषों को शीघ्र नष्ट करता है। चार मुखी रुद्राक्ष स्वयं ब्रह्मा है जो कि नर हत्या के दोषों को मुक्त करता है। पाँच मुखी रुद्राक्ष साक्षात्

रुद्र है जिसका नाम कालाग्नि है यह अभक्ष्य भोजन, अगम्यागमन, अपराध से तथा सभी प्रकार के पापों से मुक्त करता है। छः मुखी रुद्राक्ष साक्षात् कार्तिकेय है इन्हें दाहिने हाथ में धारण करना चाहिये। इससे ब्रह्म हत्या व अन्य पापों से मुक्ति मिलती है। सातमुखी रुद्राक्ष अनंग नामक है। यह भाग है इसके धारण करने से स्वर्ण चोरी आदि पापों से मुक्ति मिल जाती है। आठ मुखी रुद्राक्ष साक्षात् विनायक देव है। यह अन्नकूट, तुलाकूट, स्वर्णकूट, दुष्टवंश स्त्री या गुरु स्त्री की स्पर्श दोष इत्यादि सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। नव मुख रुद्राक्ष भैरव रूप है उसे बाईं भुजा में धारण करने से भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है तथा यह शिव के बराबर बल देता है तथा हजारों गर्भ हत्या, सैकड़ों ब्रह्म हत्या का दोष नष्ट होता है। दश मुखी रुद्राक्ष के धारण करने से ग्रह बाधा, पिशाच, बेताल, ब्रह्म राक्षस, पन्नगादि (सर्पादि) सभी शान्त होते हैं यह सभी देवों के देव साक्षात् जनार्दन है। एकादश मुखी रुद्राक्ष को धारण करने से सहस्त्र अश्वमेध यज्ञ, सौ वाजपेय तथा सहस्त्र गोदान के वराबर फल मिलता है इसे शिखा में बाँधना चाहिये। द्वादश मुखी रुद्राक्ष को कर्ण में धारण करने से बारह आदित्य प्रसन्न होते हैं। यह गोमेध और अश्वमेध के फल को देता है तथा श्रृंग वाले जन्तु व्याघ्रादिक का भय तथा आधि-व्याधि का भय नहीं रहता व सभी प्रकार की जीवहत्या के दोष से मुक्ति दिलाता है। तेरह मुखी रुद्राक्ष से रस-रसायन की सब सिद्धि होती है तथा सभी प्रकार के सुख को प्राप्त करता है। चौदह मुखी रुद्राक्ष से प्राणी शिव का शरीर रूप होता है। इसके धारण करने से पुत्र की प्राप्ति होती है तथा एक रुद्राक्ष को भक्तिपूर्वक प्रेम से शिखा में धारण करने वाले व्यक्ति सभी देवताओं में पूज्य होकर जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त करता है।

एक मुखी से चौदह मुखी रुद्राक्षों को मन्त्रों से अभिमन्त्रित करने का मन्त्र

पुराणों में व शास्त्रों में वर्णन है कि रुद्राक्ष को बिना अभिमन्त्रित किये नहीं पहनना चाहिये। क्योंकि बिना अभिमन्त्रित किये रुद्राक्ष पहनना व्यर्थ है उससे किसी कार्य की सिद्धि अथवा कोई मनोकामना पूर्ण नहीं होती। इसलिए पुराणों में प्रत्येक पहनने वाले रुद्राक्ष को मन्त्रों से अभिमन्त्रित करने का विधान है।

'पद्मपुराण' के अनुसार रुद्राक्ष को निम्न प्रकार से अभिमन्त्रित करना चाहिये। यथा—

पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत्।
रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रः पञ्चाक्षर यथा॥
ॐ त्र्यंबकादिमन्त्रं च यथा तेन प्रयोजयेत्।

अर्थात् रुद्राक्ष धारण करने वाले व्यक्ति को रुद्राक्ष को अभिमन्त्रित करने से पूर्व स्नान के समय पंचामृत और पंचगव्य का भी प्रयोग करना चाहिए। तथा रुद्राक्ष की प्रतिष्ठा में पंचाक्षर मन्त्र **"नमः शिवाय"** का पाठ करना चाहिये। तब ॐ त्र्यंबकादि मन्त्र का व्यवहार करना चाहिये।

ॐ त्र्यंबकादि मन्त्र—ॐ त्र्यंबकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्। उर्व्वारुकमिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्॥ ॐ ह्रौं अघोरे घोरेहुं घोरतरे हुं ॐ ह्रीं श्रीं सर्वतः सर्वाङ्गे नमस्ते रुद्ररूपे हुम॥ इति मन्त्रः॥

अन्य मन्त्रों से भी रुद्राक्ष की पूजा कर अभिमन्त्रित करते हैं। इसको प्रतिष्ठा विधिवत् रूप से करने से यह अधिक फलदायक होता

है। इसलिए उसको (रुद्राक्ष) अपने अपने मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर भक्तिपूर्वक पहनना चाहिये। यथा—

अनेनापि च मन्त्रेण रुद्रास्य द्विजोत्तमः।
प्रतिष्ठां विधिवत्कुर्य्यान्ततोधिक फलं भवेत् ॥
तथा यथा स्वमन्त्रेण धारयेद्भक्ति संयुतः ॥

(मन्त्रमहार्णव)

"पद्म पुराण" के अनुसार एक मुखी से चौदह मुखी रुद्राक्ष तक को क्रमवार निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(१) एक मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ॐ ऽदृशं नमः" मन्त्र से प्रतिष्ठित करना चाहिये।

(२) दो मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ॐ नमः" नामक मन्त्र से प्रतिष्ठित करना चाहिये।

(३) तीन मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ॐ नमः" नामक मन्त्र से ही प्रतिष्ठित करना चाहिए।

(४) चार मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ह्रीं नमः" नामक मंत्र से प्रतिष्ठित करना चाहिये।

(५) पञ्चमुखी रुद्राक्ष को "ॐ हूँ नमः" नामक मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(६) छः मुखी रुद्राक्ष को "ॐ हूँ नमः" मन्त्र से प्रतिष्ठित करना चाहिये।

(७) सात मुखी रुद्राक्ष को "ॐ हुँ नमः" मन्त्र से प्रतिष्ठित करना चाहिये।

(८) आठ मुखी रुद्राक्ष को "ॐ सः हूँ नमः" मन्त्र से प्रतिष्ठित करना चाहिये।

(९) नव मुखी रुद्राक्ष को "ॐ हं नमः" मन्त्र से प्रतिष्ठित करना चाहिये।

(१०) दश मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ह्रीं नमः" मन्त्र से प्रतिष्ठित करना चाहिये।

(११) ग्यारह मुखी रुद्राक्ष को "ॐ श्रीं नमः" मन्त्र से प्रतिष्ठित करना चाहिये।

(१२) बारह मुखी रुद्राक्ष को "ॐ हूँ ह्रीं नमः" मन्त्र से प्रतिष्ठित करना चाहिये।

(१३) तेरह मुखी रुद्राक्ष को "ॐ क्षां चौं नमः" मन्त्र से प्रतिष्ठित करना चाहिये।

(१४) चौदह मुखी रुद्राक्ष को "ॐ नमो नमः" मन्त्र से प्रतिष्ठित करना चाहिये।

॥इति मन्त्रः पद्मपुराणे।

× × × ×

इसी प्रकार एक मुखी से चौदह मुखी तक रुद्राक्षों को "स्कन्द पुराण" में निम्न मन्त्रों से प्रतिष्ठित करने का निर्देश दिया गया है। यथा—

(१) एक मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ए नमः" मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(२) दो मुखी रुद्राक्ष को "ॐ श्रीं नमः' मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(३) तीन मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ध्रुं ध्रूं नमः" मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(४) चार मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ह्रीं हूँ नमः" मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(५) पंचमुखी रुद्राक्ष को "ॐ श्रीं नमः" मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(६) छः मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ह्रीं नमः" मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(७) सात मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ह्रीं नमः" मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(८) आठ मुखी रुद्राक्ष को "ॐ कं वं नमः" मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(९) नवमुखी रुद्राक्ष को "ॐ ह्रीं नमः" मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(१०) दशमुखी रुद्राक्ष को "ॐ ह्रीं नमः" मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(११) ग्यारह मुखी रुद्राक्ष को "ॐ श्रीं नमः" मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(१२) बारह मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ह्रां ह्रीं नमः" मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(१३) तेरह मुखी रुद्राक्ष को "ॐ क्ष्यैं स्तौं नमः" मंत्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(१४) चौदह मुखी रुद्राक्ष को "ॐ डं मां नमः" मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

।। इति मन्त्रः स्कन्द पुराणे ।।

× × × ×

"महाशिव पुराण" में एक मुखी रुद्राक्ष से चौदह मुखी रुद्राक्ष तक को धारण करने से पूर्व रुद्राक्ष को अभिमन्त्रित करने का मन्त्र क्रम से दिया गया है जो निम्नवत् है—

(१) एक मुखी रुद्राक्ष को 'ओं ह्रीं नमः" मन्त्र से।

(२) दो मुखी रुद्राक्ष को "ओं नमः" मन्त्र से।
(३) तीन मुखी रुद्राक्ष को "क्लीं नमः" नामक मन्त्र से।
(४) चार मुखी रुद्राक्ष को "ओं ह्रीं नमः" मन्त्र से।
(५) पञ्चमुखी रुद्राक्ष को "ओं ह्रीं नमः" मन्त्र से।
(६) छः मुखी रुद्राक्ष को "ओं ह्रीं हूँ नमः" मन्त्र से।
(७) सात मुखी रुद्राक्ष को "ओं हूँ नमः" मन्त्र से।
(८) आठ मुखी रुद्राक्ष को "ओं हूँ नमः" मंत्र से।
(९) नव मुखी रुद्राक्ष को 'ओं ह्रीं हूँ नमः" मंत्र से।
(१०) दस मुखी रुद्राक्ष को "ओं ह्रीं हूँ नमः" मन्त्र से।
(११) ग्यारह मुखी रुद्राक्ष को "ओं ह्रीं हूँ नमः" मन्त्र से।
(१२) बारह मुखी रुद्राक्ष को "ओं क्रौं क्षौं रौं नमः" मन्त्र से।
(१३) तेरह मुखी रुद्राक्ष को "ओं ह्रीं नमो नमः" मन्त्र से।
(१४) चौदह मुखी रुद्राक्ष को "ओं नमः" मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(विद्येश्वर संहिता अ० २५)

× × × ×

"योगसार" नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि सर्वप्रथम रुद्राक्ष को ञ्चामृत, पञ्चगव्य आदि से स्नान कराकर पुष्प, गन्ध, दीप से पूजन कर निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करना चाहिए। जो कि एक मुखी से चौदह मुखी तक के रुद्राक्ष को अभिमन्त्रित करने का मन्त्र क्रम से दिया गया है। यथा—

एकादिचतुर्दशवक्त्राणां संस्कारे प्रत्येकं क्रमेणमन्त्रा यथा।

(१) एक मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ॐ भृशं नमः"।
(२) दो मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ॐ नमः" मन्त्र से।
(३) तीन मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ॐ नमः" मन्त्र से।

(४) चार मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ॐ ह्रीं नमः" मन्त्र से।

(५) पञ्चमुखी रुद्राक्ष को "ॐ हूँ नमः" मन्त्र से।

(६) छः मुखी रुद्राक्ष को "ॐ हूँ नमः" मन्त्र से।

(७) सात मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ॐ हूँ हूँ नमः" मन्त्र से।

(८) आठ मुखी रुद्राक्ष को "ॐ नमः" मन्त्र से।

(९) नव मुखी रुद्राक्ष को "हूँ नमः" मन्त्र से।

(१०) दश मुखी रुद्राक्ष को "ॐ हूँ नमः" मन्त्र से।

(११) ग्यारह मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ह्रीं नमः" मन्त्र से।

(१२) बारह मुखी रुद्राक्ष को "ॐ ह्रीं नमः" मन्त्र से।

(१३) तेरह मुखी रुद्राक्ष को "ॐ क्षां क्षौं नमः" मन्त्र से।

(१४) चौदह मुखी रुद्राक्ष को "ॐ नमो नमः" नामक मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिये।

(इतियोगसारे २ परिच्छेद)

रुद्राक्ष की माला का परिमाण

"पद्म पुराण" के अनुसार २७ रुद्राक्ष की माला धारण करना वाला मनुष्य पुण्य तथा सभी प्रकार के करोड़ों गुणों से युक्त होता है। यथा—

सप्तविंशति रुद्राक्षमालया देहसंस्था।
यः करोति नरः पुण्यं सर्व्वकोटिगुणंभवेत् ॥ (पद्मपुराणे)

पुनः, ३० रुद्राक्ष की बनाई हुई माला जपकर्म में धन को देने वाली, २७ रुद्राक्ष की माला शरीर को सुख देने वाली, २५ रुद्राक्ष की माला मुक्ति देने वाली तथा १५ रुद्राक्ष की माला अभिचार फल देने वाली है। यथा—

त्रियाशंदक्षैः कृता माला धनदा जपकर्मणि।
सप्तविंशति संख्यातैः कृता मुक्तिप्रदा भवेत् ॥
अक्षैस्तु पंचदशभिरभिचार फलप्रदाः ॥

सोलह प्रकार के रुद्राक्षों में पञ्चमुखी व एक मुखी रुद्राक्ष जो मनुष्य धारण करते हैं वे मनुष्य जीवन से मुक्त हो जाते हैं। एक मुखी रुद्राक्ष धारण करने वाला साक्षात् शिव रूप होता है क्योंकि वह माला ब्रह्म-हत्या को भी दूर करती है। यथा—

रुद्राक्षाणां पञ्चमुखस्थैवैक मुखः स्मृतः।
ये धारयंत्येकमुखं रुद्राक्षं नित्यमेव हि ॥१॥
जीवन्मुक्तास्तु विज्ञेया नरास्ते नात्र संशयः।
एक वक्त्रः शिवः साक्षात् ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥२॥

(केदारखण्डे)

१०८ दाने की माला सभी प्रकार की कामना को पूर्ण करती है।

रुद्राक्ष का मूल में ब्रह्मा और नाल में साक्षात् विष्णु भगवान का निवास है। यथा--

अष्टोत्तरशतेनापि माला सर्वार्थसाधिका।
रुद्राक्षमूलं ब्रह्मा तु तन्नालं विष्णुच्यते॥

(केदारखण्डे)

[नोट—१६ प्रकार के रुद्राक्ष १४ तो मुखभेद से हैं। १५वां शुभाक्ष एवं १६वां भद्राक्ष नामक रुद्राक्ष है।]

जैसे—भद्राक्ष नामक रुद्राक्ष के बारे में कहा गया है कि—

भद्राक्षेऽपि सुश्रेष्ठ तद्गुणं परिकीर्तितम्॥

(इति योगसारे २ परिच्छेद)

ऐसे ही महाशिव पुराण में एक स्थल पर शुभाक्ष रुद्राक्ष की एक जाति के लिए आया है।

रुद्राक्ष की जपमाला का निर्माण

रुद्राक्ष के मुख में ब्रह्मा का निवास होता है। मध्य में रुद्र का निवास होता है तथा पुच्छ भाग में विष्णु का निवास होता है। इस प्रकार रुद्राक्ष भोग मोक्ष को देने वाला होता है। पांच मुखी रुद्राक्ष के २५ दाने को जो कांटों से युक्त रक्त वर्ण का हो, गोपुच्छ के समान वलयाकार (गोलाकार) हो, लेकर धागे में पिरोकर माला तैयार करना चाहिए। माला निर्माण में रुद्राक्ष के मुख से मुख तथा पुच्छ से पुच्छ जोड़कर, सुमेरु में रुद्राक्ष का मुख ऊपर की ओर करके धागे को नागपाश नामक गांठ लगानी चाहिए। फिर माला को सुगन्धित जल व पञ्चगव्य से धोकर तब शिवाम्भसा (गंगाजल) आदि तथा मन्त्रों से न्यास कर शिवास्त्र मन्त्र से कवच को अवगुण्ठन करना चाहिए। यथा—

रुद्राक्षस्य मुखंब्रह्माबिन्दूरुद्र इतीरितः ॥१॥
विष्णु पुच्छं भवेच्चैव भोग मोक्ष फल प्रदम्।

× × ×
× × ×

ततः शिवाम्भसाऽऽक्षाल्य ततो मन्त्रगणान्न्यसेत्।
स्पृष्ट्वा शिवास्त्रमन्त्रेण कवचेनाऽवगुण्ठयेत् ॥६॥

(देवी भागवत/११ स्कन्ध/अ० ५/१-६)

माला निर्णय

अरिष्ट पुत्र जी वैश्य शंखपद्मं मणिस्तथा।
कुशग्रन्थिश्च रुद्राक्षा उत्तमंचोत्तरोत्तरम् ॥१३३॥

मन्त्रखण्डे—

स्फाटिकी मौक्तिकी वापि प्रोतव्या सितत्रकैः।
सर्वकर्मसमृद्ध्यर्थं जपेरुद्राक्षमालया। १३४॥
वैष्णवे तुलसीमाला गजदंतर्गणेश्वरे।
त्रिपुराया जपे शस्ता रुद्राक्षैरक्तचन्दनै ॥१३५॥
रेखयाष्ट गुण विद्यात् पुत्रञ्जीवैर्दश स्मृतम्।
शतं चन्दन शंखैश्च प्रवालैस्तु सहस्त्रकम् ॥१३६॥
स्फाटिकैर्लक्षसाहस्त्रं मौक्तिकैर्लक्षमेव च।
दशलक्षं राजताक्षैः सौवर्णैः कोटिरुच्यते ॥१३७॥
कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तगुणितं भवेत्।
अष्टोतर शतैर्माला पञ्चाशचचतुराधिकैः ॥१३८॥
सप्तविंशतिभिः कार्या एकग्रीवा समेरुका।
मुखं मुखेन संयोज्य पुच्छं पुच्छेन योजयेत् ॥१३९॥
प्रोतव्या सितसूत्रेण सत्कर्मफल सिद्धये।
पटसूत्रकृता माला देव्याः प्रीतिकरा मता ॥१४०॥
कार्याप्तैवैष्णवी माला पद्म सूत्रैरथापि वा।
उर्णाभिर्वल्कलैर्वापि शैवी माला प्रकीर्तिता ॥१४१॥
कार्पास सूत्रैरन्येषां विद्ध्याज्जापमालिकाम्।
त्रिशंद्भिः स्याद्धनं पुष्टिः सप्तविंशतिभिर्भवेत् ॥१४२॥
पंचविंशतिभिर्मोक्ष पंच स्यादभिचारणे।
पञ्चाशद्भिः कुलेशानि सर्वसिद्धिरुदीरीता ॥१४३॥

जप्त्वाक्षमालां सकलां भ्रामयेदाशिरवामणेः।
प्रदक्षिण पुनर्वक्रमारस्य्यैवं समाचरेत् ।।१४४।।
स्वयं वामेन हस्तेन जपमालां न संस्पृशेत्।
अदीक्षितो द्विजो वापि स्पृशेच्चेच्छुद्धिमाचरेत् ।।१४५।।
न धारयेत्करे मूर्धिन कण्ठे च जपमालिकाम्।
जपकाले जपं कृत्वा सदा शुस्द्धथले क्षिपेत् ।।१४६।।
गुरु प्रकाशयेद्धीमान्मत्रं नैव प्रकाशयेत्।
अक्षमालां च मुद्रां च गुरोरपि न दर्शयेत् ।।१४७।।
कम्पनत्सिद्धिहानिस्स्याद्धननं बहुदुःखकृत्।
शब्दे जाते भवेद्रोगी करभ्रष्टा विनाशकृत ।।१४८।।
छिन्ने सूत्रे भवेन्मृत्युस्तस्माद्यत्नपरोभवेत्।
जपांते कणदेशे वा उच्चस्थानेथवा न्यसेत् ।।१४९।।

(मंत्रमहार्णव)

अर्थात् स्फटिक व मौक्तिक का माला भी सूत्र में पिरोकर पहनते हैं परन्तु फिर भी रुद्राक्ष की माला से जप करने से सभी प्रकार के कार्यों में सिद्धि प्राप्त होती है। वैष्णव भक्त के लिए तुलसी की माला तथा गणेश भक्तों के लिए हाथी दांत की माला प्रशस्त मानी गई है तथा त्रिपुरा सुन्दरी नामक देवी के लिए रुद्राक्ष व लाल चन्दन की माला से जप करना चाहिए। रेखया की माला गुणों में आठ गुणा गुणवाला, पुत्रञ्जीव की माला दस गुना गुण वाला होता है। चन्दन व शंख की माला सौ गुना गुण वाला, प्रवाल की माला हजार गुना गुण वाला होता है। स्फटिक की माला लक्ष सहस्त्र गुना गुण वाला, तथा मौक्तिक की माला लाख गुना गुण वाला होता है। चांदी की माला दस लाख गुना अधिक गुण वाला, तथा सोने की माला करोड़ गुना गुण वाला होता है व कुशग्रन्थि की माला तथा रुद्राक्ष की माला अनन्त गुण वाला होता है। १०८ दाने की माला, ५४ दाने की माला,

२७ दाने की माला सभी एक समेरु सहित होने पर लाभ करती है। दाने की माला बनाते समय मुख को मुख से तथा पुच्छ को पुच्छ से जोड़कर तथा श्वेत धागे में पिरो कर माला बनाने से पुण्य कर्मों के फल की प्राप्ति होती है। तथा पटसन के सूत्र की माला देवी के लिए प्रिय होता है। उर्णाभिवल्कल की माला शैवी (शिव) को प्रिय होती है। कर्पास सूत्र में गुंथे माला अन्य देवताओं के जप में प्रयुक्त होता है। तीस दाने की माला से धन की प्राप्ति होती है तथा सत्ताइस दाने की माला से स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। २५ दाने की माला से मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा पांच दाने की माला से अभिचारण होता है। पचास दाने की माला सभी प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाला रुद्र रूप होता है। अक्ष माला को जपने के बाद समग्र माला को अपने शिखा पर्यन्त मस्तक से दक्षिणावर्त एवं वामवर्त स्पर्श कराना चाहिए।

अपने बायें हाथ से माला को कभी स्पर्श नहीं करना चाहिए तथा अदीक्षित ब्राह्मण के द्वारा भी माला का स्पर्श हो जाने से माला की शुद्धि करना चाहिए। जपमाला को हाथ में कलाई व कण्ठ में धारण नहीं करना चाहिए। जप काल में जप करने के बाद सदा ही रुद्राक्ष की माला को शुद्ध स्थान में रख देना चाहिये। बुद्धिमान लोग मंत्रों को गुरु को भी प्रकाशित नहीं करते हैं अर्थात् नहीं बताते हैं। अक्षमाला व मुद्रा गुरु को भी नहीं बतानी चाहिए। माला का जाप करते समय कांपने से अर्थात् हिलते रहने से धन की हानि होती है तथा बहुत दुःख होता है। जप में आवाज होने से मनुष्य रोगी होता है तथा हाथ से माला गिर जाने से मनुष्य विनाश को प्राप्त होता है। जप करते समय माला का सूत्र टूट जाने से मनुष्य शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त करता है। जप माला को जप करने के बाद कण प्रदेश में या उच्च स्थान पर रखना चाहिए।

उपरोक्त विवरण को देखने से ज्ञात होता है कि यह सब नियम आदि इस विशिष्ट भावना से अनुप्राणित है कि रुद्राक्ष अति महत्ववान,

परम पवित्र, परमगोप्य, परमोच्च तथा परम आदरणीय वस्तु है। हर जगह इसकी उच्चता, सुरक्षा व पवित्रता का विचार रखा गया है। साधक के मन में उसकी साधना और साध्य के साथ-साथ उसके साधन उपकरण के प्रति भी उसका तीव्र लगाव, अनन्य निष्ठा उसे सरलता से शीघ्र साफल्य अथवा सिद्धि प्रदान करती है। इसलिये माला को पवित्र रखो, उसे गुप्त रखो, उसे सुन्दर सुघर सुगठित और सुरक्षित रखो। उसे एकाग्र होकर जपो, उस समय तुम्हारी भावना एकाग्रता की मुद्रा में हो, तुम्हारे सभी अंग-प्रत्यंग, इन्द्रियों के क्रीड़ा-कलाप अवरुद्ध होकर केवल मन आत्मा और वाणी अपने मन्त्र में सन्निहित होकर माला के साथ साथ घूम रही हो। अन्य सभी गतियाँ बन्द हों। यदि यह एकाग्रता यह निष्ठा साधक में है तो लेखक समझता है कि माला हिली-गिरी या प्रगट हो गई तो उससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। किन्तु हम तो केवल यहाँ रुद्राक्ष के विषय में ही विचार करने को बाध्य हैं। निष्ठा और सिद्धि के विषय में नहीं। हम यह पाठकों के विवेक पर छोड़ते हैं कि वे माला सम्बन्धी क्रिया-काण्ड को महत्व देते हैं या भाव निष्ठा को।

जप करने का विधान

शास्त्रों में माला जप करने की विधि दो प्रकार की कही गई है। (१) गोमुखी निर्णय तथा (२) अंगुली निर्णय।

१. गोमुखी निर्णय—

वस्त्रेणाच्छादित करं दक्षिणं यः सदाजपेत।
तस्यस्यात्सफलं जाप्यं तद्धीनफलं स्मृतम् ॥१७५॥
भूत राक्षस बेताला सिद्ध गंधर्वचारणाः।
हरंति प्रकटं यस्मात्तस्माद्गुप्तं जपेत्सुधीः ॥१७६॥

अर्थात् दाहिने हाथ को सदा वस्त्र से ढक कर जप करना चाहिए। इस प्रकार जप करने से वह जप सफल होता है तथा इसके अच्छे फल मिलते हैं। माला को गुप्त रूप से जप करने से भूत, राक्षस, बेताल, गन्धर्व, चारण आदि की सभी प्रकार की बाधायें दूर होती हैं।

२. अथाङ्गुली निर्णय—

(शिवाज्ञाविद्याग्रन्थे)

अगुंष्ठं मोक्षदं विद्यात्तर्ज्जनी शत्रुनाशिनी।
मध्यमा धनदा शांति करत्वे वा ह्यनामिका ॥
कनिष्ठा कर्षणेशस्ता जपकर्मणि शोभने।
अंगुष्ठेन बिना कर्म कृतं तदफल यतः ॥

अर्थात् अंगुष्ठे की सहायता से माला का जप करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा तर्ज्जनी अंगुली की सहायता से जप करने से शत्रु का नाश होता है। मध्यमा अंगुली की सहायता से माला जप करने से धन की प्राप्ति होती है तथा अनामिका अंगुली की सहायता से माला

जाप करने से शान्ति प्राप्ति होती है। कनिष्ठा अंगुलो की सहायता से जप करना भो सुन्दर होता है व बिना अंगुष्ठ की सहायता से किया कर्म का भी फल वैसा ही हो.ता है।

ग्रन्थान्तरे—

मध्यमानामिकां गुण्ठैरक्षमालामणी शतैः।
एवं जपस्य चैकस्य क्रमोऽय चालयेज्जपेत् ॥
अंगुष्ठेन तु मोक्षाय मध्यमाधपिवृद्धये।
जपेदनामिकां गुष्ठैर्नेतराश्यां कदाचन।
अंगुष्ठमध्यमायोगात्सर्व सिद्धि प्रदासने ॥

(मन्त्र महार्णव)

अर्थात् मध्यमा, अनामिका व अंगुष्ठ नामक अंगुलियों से रुद्राक्ष की माला को क्रम से एक-एक करके चलाता हुआ सौ बार जप करना चाहिए। अंगुष्ठे की सहायता से माला को चलाने से मोक्ष व मध्यमा अंगुली से माला को चलाने से यश व श्री की वृद्धि होती है। अंगुष्ठ व अनामिका की सहायता से माला को कभी नहीं चलाना चाहिए। अंगुष्ठ व मध्यमा अंगुलो की सहायता से माला को चलाकर जप करने से सभी प्रकार की सिद्धि प्राप्त होतो है।

पुनः मतान्तरे—

अंगुष्ठमध्यमाभ्यां च चालयेन्मध्यमध्यतः।
तर्जन्या न स्पृशेदेनां मुक्तिदोगणनक्रमः ॥१८०॥

अर्थात् अंगुष्ठ व मध्यमा अंगुलो के मध्य माला को चलाना तथा उसे तर्जनो अंगुलो से स्पर्श न होने देना मुक्ति को देने वाला है।

माला संस्कार विधि

असंस्कृत माला कभी सिद्धि प्रदान करता है परन्तु संस्कारित माला सदा ही भुक्ति और मुक्ति फल को प्रदान करने वाला है। यथा—

असंस्कृता भवेन्माला व कदाचित्सिद्धिदा।
संस्कृता तु सदा माला भुक्ति मुक्ति फलप्रदा॥

शुद्धिकरण--

कांस्य थाल्यां वर्गाकारेणाष्टाश्वत्थ पत्राणि उत्तानानि डण्ठलानिमध्यगतानि पत्रामेकं मध्येस्थाप्य तस्योपरि पर हस्तग्रंथितां माला निधाय कुशोदकेन पञ्चगव्येन च पञ्चाशन्मातृकाक्षरैः क्षालयेत्। यथा—ॐ ह्रीं अं आं इं ईं उं ऊं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं त्रं ज्ञं।

पुनः शुद्ध जलेन्—

ॐ सद्यो जातं प्रपद्यामि सद्यो जाताय वै नमोः नमः। भवे भवे नाति भवे भवस्य मां भवोद्भवाय नमः।

धूप—ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठ्याय नमः। श्रेष्ठाय नमः रुद्राय नमः। कालाय नमः कल विकरणाय नमः।

चन्दन—

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नोरुद्रः प्रचोदयात्। प्रत्येकेन् मणिना १० बारं जपः—ॐ ईशानः सर्व विद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्माशिवोऽस्तु सदाशिवोम् सुमेरुणा। १० बारं जपः—ॐ अघोरेभ्योऽम् घोरेभ्यो घोर घोर तरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्व सौम्यः नमस्तेऽस्तु रुद्र रूपेभ्यः।

पंचोपचारेण माला सम्पूज्य प्रार्थयेत्—

ॐ महामाये महामाल्ये सर्वशक्ति स्वरूपिणी ।।
चतुर्वगस्त्वयो न्यस्तः तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।।
अविघ्नं कुरु माले त्वं गृहणामि दक्षिणेकरे ।
जपकाले च सिद्धपर्चं पसीद मम सिद्धये ।।

स्ववामेदापो दक्षे धुपः । मालायांमंगुलीनां न्यासः । सुमेरू नैवलं धयेत् तर्जनो—अंगुष्ठाभ्यां बिना जपः ।

रुद्राक्ष धारण करने का समय—

ग्रहण, मेष, तुला, संक्रांति, अयन, समय तथा अमावस व पूर्णिमा को तथा अन्य पवित्र दिनों को रुद्राक्ष धारण करना चाहिये।

ग्रहणे विषुवे चैव सङ्क्रमे अयने यथा ।
दर्शेच पौर्णमासे च पुण्येषु दिवसेष्वपि ।।

(देवी भागवत/११ स्कन्ध)

रुद्राक्ष धारण करने में अभोज्य पदार्थ—

रुद्राक्ष धारण करने वाले व्यक्ति को मद्य, मांस, लशुन, प्याज, शोभान्जन, श्लेष्मान्तक, विड्, वराह (पक्षी व सूअर) इन्हें नहीं खाना चाहिए। यथा—

मद्यं मांसतुलशुनं पलाण्डु शिग्रुमेवच ।
श्लेष्मांतकं विड्वरांह भक्षणे वर्जयेत्ततः ।।४२।।

(महाशिव पुराण/अध्याय २५)

वैसे रुद्राक्ष धारण करने वालों को विशेष परहेज नहीं है फिर भी जहाँ तक सम्भव हो सके रुद्राक्ष को पवित्र रखना चाहिए। जैसे—मैथुनकाल में, शौचादिकाल में इसे उतार देना चाहिए। यदि उतारना भूल जाय तो इसे शुद्ध जल से प्रक्षालन कर अपने इष्टदेव का स्मरण कर धारण करना चाहिए। दूसरे का पहना हुआ रुद्राक्ष जल से धोकर पहनना चाहिए तथा इस पर धूल आदि की गन्दगी चिपकने नहीं देना चाहिये।

साधु संतों द्वारा वर्णित रुद्राक्ष धारण विधि

साधु संतों के बताए अनुसार रुद्राक्ष के विषय में कुछ बातों का यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ जो निम्न प्रकार हैं—

एक मुखी रुद्राक्ष को किसी पवित्र दिन व पवित्र नक्षत्र में सफेद धागे में पिरो कर इसके लिये बताए गए मन्त्रों में से किसी एक से अभिमंत्रित कर गले में पहनना चाहिए। इससे भी कष्टों का निवारण होता है तथा इसे धन-सम्पत्ति में रखने से पैसे की कमी नहीं होती।

दो मुखी रुद्राक्ष को शिव व शक्ति का स्वरूप माना गया है अतः इसे शिव भक्त या शक्ति भक्त जो भी पहनना चाहें लाल धागे में पिरो कर सोमवार के दिन प्रातः स्नान कर शिवलिंग का या मां भगवती के चरणों में स्पर्श कर दाहिने हाथ में "ॐ अर्ध्यनेश्वर देवाय नमः।" या उपरोक्त बताये गये मंत्रों का जाप करते हुए बाँधना चाहिए। इससे मन भक्ति में लगता है तथा सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

तीन मुखी रुद्राक्ष को लाल धागे में पिरो कर रविवार के दिन प्रातः सूर्योदय से पूर्व नहा धोकर "ब्रह्मा विष्णु देवाय नमः" या उपरोक्त बताये मन्त्रों का जाप करते हुए गले में पहनना चाहिए। इससे ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देव खुश होकर सुख की प्राप्ति करते हैं।

चार मुखी रुद्राक्ष को लाल धागे में पिरो कर वृहस्पतिवार के दिन नहा धोकर प्रातः सूर्योदय के समय किसी केले के पौधे से स्पर्श करा कर "ॐ ब्रह्मा देवाय नमः" या पूर्व वर्णित मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर गले में पहनना चाहिए। इससे शास्त्रों के अध्ययन से विद्यावृद्धि के कारण व्यक्ति को समाज में अति सम्मान प्राप्त होता है।

पाँच मुखी रुद्राक्ष को एक से तीन दाने तक लाल धागे में पिरो कर शिवलिंग से स्पर्श करा कर "ॐ नमः शिवायः" जप करते हुए धारण करना चाहिए। ईश्वर भक्ति के लिए पाँच मुखी रुद्राक्ष की माला से जप करना चाहिए तथा पंच मुखी रुद्राक्ष के छोटे दाने की माला को गले में धारण करना सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

छः मुखी रुद्राक्ष के तीन दानों को लाल धागे में पिरो कर सोमवार के दिन शिवलिंग से स्पर्श करके "ॐ नमः शिवाय कार्तिकेय नमः" या पूर्व बताए गए मन्त्रों का जाप करते हुए गले में धारण करना चाहिए। यह शक्तिशाली होता है। इसके धारण करने से मनुष्य अति बुद्धिमान तथा शारीरिक रूप से स्वस्थ होते हैं तथा इन्हें कोई दिमागी परेशानी नहीं होती तथा किसी भी प्रकार के व्याधि जैसे—रक्तचाप, हृदयरोग, यक्ष्मा, दमा, खाँसी, उदर रोग आदि जटिल बीमारियों को ठीक करता है।

सात मुखी रुद्राक्ष को लाल धागे में पिरो कर शिवलिंग से स्पर्श करके "ॐ नमः शिवाय महालक्ष्मी नमः" मन्त्र का जाप करते हुए गले या दाहिने बाजू में पहनना चाहिए। इसके पहनने से व्यक्ति के पास धनाभाव कभी नहीं होता। नौकरी एवं व्यापार में उन्नति, धन की प्राप्ति तथा ईश्वर भक्ति प्रबल होती है।

आठ मुखी रुद्राक्ष को लाल धागे में पिरो कर गणेश जी के चरणों में स्पर्श कर "ॐ सदा मंगल गणेशाय नमः" मन्त्र का जप करते हुए धारण करना चाहिए। इसे मांगलिक कार्यों के लिए शुभ माना गया है।

नव मुखी रुद्राक्ष को लाल धागे में पिरो कर सोमवार के दिन नहा-धोकर माँ दुर्गा के चरणों में स्पर्श करा कर "ॐ दुर्गाय नमः" मन्त्र का जाप करते हुए गले में धारण करना चाहिए। इसे नवदुर्गा का स्वरूप माना गया है तथा स्त्री-पुरुष सभी पहन सकते हैं। इससे नव शक्तियाँ

प्रसन्न होकर सभी प्रकार के कष्टों का निवारण करते हुए सुख प्रदान करती हैं तथा अष्ट सिद्धियों व नवों ऋद्धियों को देती हैं।

दस मुखी रुद्राक्ष को लाल धागे में पिरो कर रविवार या वृहस्पतिवार के दिन प्रातःकाल नहा-धोकर पूजा पाठ करके "ॐ भगवान विष्णुय नमः" मन्त्र का जप करते हुए गले या दाहिने बाजू में धारण करना चाहिए। इसके धारण करने से मानसिक परेशानियाँ व मस्तिष्क रोग का नाश तथा सन्तान प्राप्ति व विद्या की प्राप्ति होती है।

ग्यारह मुखी रुद्राक्ष को लाल या पीले धागे में पिरो कर सोमवार के दिन प्रातःकाल नहा-धोकर सूर्यदेव के निकलने से पहले अपने इष्टदेव के चरणों में स्पर्श कर "ॐ सर्व शक्तिमान इष्ट देवाय नमः" का पाठ करते हुए एक दाने को गले में धारण करना चाहिए। एक मुखी रुद्राक्ष के अभाव में इस एकादश मुखी रुद्राक्ष को पहना जा सकता है क्योंकि इसे एकादश रुद्र का स्वरूप माना गया है। इसके धारण करने से सभी प्रकार के पापों का नाश होता है तथा रोगों का नाश, दरिद्रता का नाश व शोक नाश होता है। साधु सन्तों में श्रद्धाभाव, सत्य व प्रेम को बढ़ाता है।

बारह मुखी रुद्राक्ष को पीले धागे में पिरोकर सूर्योदय के समय स्नान कर सूर्य की ओर मुख करके एक दाने को गले में पहनते समय "ॐ सूर्य देवाय नमः" मन्त्र का जाप करना चाहिए। इसके धारण करने से मान-सम्मान में वृद्धि तथा चेहरे पर खुशी छायी रहती है। इसे सूर्य का स्वरूप माना गया है।

तेरह मुखी रुद्राक्ष को लाल या पीले धागों में पिरो कर प्रातःकाल स्नान करके अपने इष्टदेव के चरणों में स्पर्श करके "ॐ देवाये इन्द्र-देवाय नमः" मन्त्र का जाप करते हुए शुद्धता के साथ गले में हृदय तक धारण करना चाहिए। तेरह मुखी रुद्राक्ष को धारण करने से व्यक्ति

राजसी मान सम्मान को प्राप्त करता है तथा वह व्यक्ति शासकीय मामलों में बुद्धिमान व तेजस्वी माना गया है।

चौदह मुखी रुद्राक्ष को लाल धागे में पिरो कर सोमवार के दिन नहा-धोकर शिवलिंग से स्पर्श करके "ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय" मन्त्र का जाप करते हुए भगवान शिव के समक्ष शीश या हृदय में धारण करना चाहिए। यह साक्षात् शिव का रूप है ऐसी मान्यता है। इसके धारण करने से व्यक्ति को सभी प्रकार की खुशियाँ होती हैं तथा वह खुशहाल होता है। उसके मनोविकार नष्ट होते हैं। दिन पर दिन उस व्यक्ति के अन्दर भक्ति, दया, धर्म व आत्मज्ञान की शुद्ध रूप से वृद्धि होती है।

गौरी शंकर रुद्राक्ष

गौरी शंकर रुद्राक्ष प्राकृतिक स्वभाव से ही यह वृक्ष से जुड़ा हुआ उत्पन्न होता है। गौरी शंकर रुद्राक्ष को भी शिव शक्ति के तुल्य अपार शक्ति वाला तथा शिव-शक्ति का स्वरूप ही माना गया है, इसलिए इस रुद्राक्ष को धारण करने से शिव व शक्ति अर्थात् शंकर व पार्वती दोनों ही प्रसन्न होते हैं। इसे घर में रखकर विधिवत् पूजा करने से मोक्ष को देने वाला, खजाने में रखने से खजाने को बढ़ाने वाला होता है। इससे एक मुखी रुद्राक्ष से प्राप्त होने वाले सभी फल प्राप्त होते हैं। इसके दर्शन मात्र से सभी प्रकार के आनन्द व सुख मिलता है। इसे भी लाल या पीले धागे में पिरो कर सोमवार के दिन नहा-धोकर शिवलिंग व पार्वती जी के चरणों में स्पर्श करके "शिव शक्ति रुद्राक्षय नमः" मन्त्र का जप करते हुए हृदय तक धारण करना चाहिए। इसे एक-मुखी रुद्राक्ष के अभाव में धारण किया जाता है।

वनस्पति विज्ञान के दृष्टिकोण से रुद्राक्ष का वर्णन

रुद्राक्ष का वर्णन तो बहुत से वनस्पति विशेषज्ञों ने किया है जिसमें मात्र वनस्पति परिचय ही है। इसके उपयोग के विषय में कुछ वर्णन नहीं मिलता। यह Elaeocarpus (Lin) नामक वर्ग की वनस्पति है।

Elaeocarpus

It is evergreen trees with penniveised leaves, old leaves often red before falling, Fl. in the species here described bisexual, racemose in the oxils of early deciduous bracts. Petals fringed or loved, rarely entire inserted at the base of a thick glandular disk or torus, induplicate—valvete in bud. Stamens numerous inserted inside the disk. Anthers linear opening at the top by two confluent short slits. Ovary 2-5 celled, style—1, subulate. A drupe stone, celled or 2-5 celled, one seed in each cell. Albumen fleshy, cotyledons flat broad, 123 species known most in the two Peninsulas and the Malaya Archipelago outside this area from Madagascar and Secotra to China and Japan and the Pacific Island. About 25 species occur in India.

(Indian Trees by. D. Brandies)

Elaeocarpus ganitrus.

E. sphaericus (Gaertn.). K Schum. Uttrasum Bead Tree.

D. E. P., III, 205; C. P., 511; F I. Br. Ind; I, 400.

Name :—Sanskrit, Marathi, Telgu, Tammil, Kannara & Malyalama—Rudraksha; **Hindi**—Rudraksha; Rudraki; **Bengali**—Rudrakhya; **Uria**—Rudrkhyo; **Assami**—Rudri, sohlangskei. ludrok, udrok.

Definition

A medium sized tree occuring in Nepal, Bihar, Bengal, Assam, Madhya Pradesh and occasionally cultivated as on Ornamental tree. Leaves oblong, lanceolate, subentire nearly, glabrous. Flowers white in dense racemes arising mostly from old leaf axils. Drupe deep or bluish purple, globase or obovoid (05—1·0 in diam) enclosing a hard, longitudinally grooved. tubercled normally 5-celled stone.

The stone are cleaned, polished, sometimes stained and used as beads for rosaries bracelets and other ornamental objects ; they are frequently set in gold, freaky stones with fewer or more than 5 cells fetch high prices.

(The Wealth of India by. CSIR Publication)

The fruits is sour, heating useful in "Vata & Kapha" diseases of the head, epileptic fits (Ayurved)

(Kirt & Basu-I 404).

2. Elaeocarpus Stipularis Bl. kurz. El., 170,

A large tree in the evergreen forest of the Martban and Tenasserin hills Branchlets petioles under side of leaves and inflorescence soft-tomentose. Leaves elliptic or elliptic—oblong blade 3-7 petiole one in long stipules broad palmately lobed. 3-5 merved, Fl-small, sepals 1/5 in, pedicels longer than sepals torus of 5 distinct glabose truncate 2 grooved fleshy glands stamens 20-25 filaments half the length of anthers, stone one seeded in thin pulp. B. Ovary 3 celled each cell with 2 collateral Ovules. Fl. small sepals not over 1/4; rarely 1/3 in. petals cunecte, deeply laciniate, Longer anther valve ciliate.

References

Roxb; Fl. Ind; Ed. C. B. C; 433; Voigt, Hort, sub. cal; 123; Brandis; For. Fl; 43.Kurz or Fl. Burm, I; 168; Beddoome, For Man; 38; Dalz & Gibs; Bomb, Fl, 27; Lisboa, u. Pl. Bomb; 286; Bal four, cyclop; I, 1035; Treasury of Bot. I. 444.

आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से रुद्राक्ष का वर्णन

आयुर्वेद के निघण्टुओं में चाहे अर्वाचीन हो या प्राचीन रुद्राक्ष का संक्षिप्त वर्णन ही देखने को मिलता है। सम्भवतः रुद्राक्ष अपने रस, गुण, वीर्य व विपाक के आधार पर कम तथा अपने प्रभाव के आधार पर अधिक काम करता है। फिर निघण्टुओं में रुद्राक्ष का जो वर्णन है उसे ही लिख रहा हूँ।

रुद्राक्ष

Fam. (कुल)—Elaeocarpaceae

पर्यायनाम—रुद्राक्षं च शिवाक्षं च शर्वाक्षं भूतनाशनम्।
पावनं, निलकण्ठाक्षं हराक्षं च शिवप्रियम्॥

लेटिन नाम—Elaeocarpus ganitrus Roxb.

संस्कृत नाम—रुद्राक्ष, शिवाक्ष, शर्वाक्ष, भूतनाशन, पावन, निलकण्ठाक्ष, हराक्ष, शिवप्रिय (तृणमेरु, अमर, पुष्पचामर) आदि। हिन्दी-बंगाली-गुजराती-कर्णाटकी-तैलङ्गी-रुद्राक्ष। अं०—Utrasum Bead Tree.

वनस्पति परिचय

इसका वृक्ष मध्यमाकार लगभग ४०-५० फीट की औसत ऊँचाई का होता है। पत्र ३-६ इञ्च लम्बे अण्डाकार, प्रासवत् या आयताकार होते हैं। **पुष्प**—श्वेत वर्ण के मञ्जरियों में मधुर गंध वाला होता है। **फल**—गोल या लम्ब गोल, नीले वर्ण के १/२-१ इञ्च व्यास के एवं गुठली १—१४ तक खड़ी नलियों से युक्त एवं पृष्ठ पर दानेदार होती

होती है। जिसके अन्दर बीज तथा कोश ४ से ५ होते हैं। इन गुठलियों को ही साफ करके तथा पालिश कर माला बनाते हैं। बड़े आकार के तथा नालियों की कमी या अधिकता से इनका मूल्य बढ़ जाता है। यह नाली ही रुद्राक्ष का मुख कहा जाता है। जिस बीज में जितनी नाली उपस्थित होती हैं वह उतना ही मुखी रुद्राक्ष कहा जाता है।

जाति—(१) रंग भेद से रुद्राक्ष की चार जातियाँ होती हैं।

(१) श्वेत, (२) रक्त, (३) पीत व (४) कृष्ण वर्ण के।

(२) मुख भेद से १४ प्रकार का रुद्राक्ष होता है। यथा—एक मुखी दो मुखी, तीन मुखी..........चौदह मुखी तक।

(३) विश्व में रुद्राक्ष की लगभग १२३ जातियाँ हैं परन्तु भारत में लगभग २५ जातियाँ उपलब्ध हैं। यथा—

E.lanceaefolius Roxb, E.stipularis आदि।

उत्पत्ति स्थान—बंगाल, बिहार, आसाम, मध्यप्रदेश; मलेशिया, मैडागास्कर, चीन, पैसीफिक आइसलैंड आदि।

गुण—गुरु, स्निग्ध। **रस**—मधुर। **वीर्य**—शीत। **विपाक**—मधुर। **प्रभाव**—सर्वदोषहर।

उपयोग—**"शालिग्राम निघण्टु"** के अनुसार रुद्राक्ष अम्लीय उष्ण व वातनाशक तथा कफ निःसारक होता है। शिरः शूल में खाने से व लेप करने से लाभ होता है। भूत बाधा तथा ग्रह बाधा को दूर करने वाला होता है। यथा

रुद्राक्षम्लमुष्णं च वातघ्नं कफनाशनम्।
शिरोऽतिशमनं रूच्यं भूतग्रह विनाशनम्॥

"अभिनव निघण्टु" के अनुसार रुद्राक्ष की **प्रकृति**—गरम, तर होती है तथा कोई-कोई व्यक्ति इसे ठण्डा कहते हैं।

गुण व उपयोग—(१) रुद्राक्ष शरीर के समस्त अंगों-प्रत्यंगों को शक्ति प्रदान करता है। (२) यह दोषों यथा वात-पित्त, कफ विकारों को नष्ट करता है। (३) उदर कृमि नाशक है। (४) छोटे बच्चों के रोगों में, खाँसी में तथा स्त्री के प्रसूत रोगों में लाभ करता है तथा (५) लुता विषों व सर्प विषों को नष्ट करता है।

"**आयुर्वेदीय औषधि निघण्टु**" (लेखक—थप्पील, कुमारन कृष्णन) के अनुसार—

औषधि नाम—	भाषा—	ग्राह्यांश—	रस-वीर्य-विपाक
रुद्राक्षम्	रुद्राक्ष	पक्वफलम्	अ-ल-रु-उ०, पा-उ० (अम्ल-लवण-रूक्ष-उष्ण, विपाक, उष्ण।
रुद्राक्ष:	रुद्राक्ष	पक्वफलम्	अ-ल-रु० उ० पा उ० (अम्ल - लवण - रुक्ष -उष्ण। विपाक—उष्ण)

"**निघण्टु आदर्श**" के अनुसार रुद्राक्ष फ़ल स्वाद में खट्टा-मीठा होता है। अतः लोग इसके फल का अचार भी बनाते हैं। इसके फल को ग्रहणी व अतिसार में खिलाने से लाभ होता है। फल की मज्जा खट्टी होती है। इसका विशेष रूप से उपयोग अपस्मार व मानसिक व्याधियों में करते हैं।

"**राजनिघण्टु**" के अनुसार रुद्राक्ष अम्लीय, उष्ण, वात व्याधि व कृमि रोग नाशक, शिर:शूल, ग्रहबाधा, भूत बाधा तथा विष दोषों को नष्ट करता है तथा रुचिकर है।

यथा—अम्लत्वम्, उष्णत्वम्, वातकृमि, शिरोऽर्तिभूत—ग्रहविष-नाशित्वम्।

रुच्यत्वञ्च (इति राजनिघण्टु)।

"**वनस्पति चन्द्रोदय**" के अनुसार—

१. रुद्राक्ष चेचक, बोदरी और अड़बड़ा के मौसम में रुद्राक्ष की माला धारण करने से इन बीमारियों का होने का डर नहीं रहता। यदि इस प्रकार की व्याधियों से मनुष्य ग्रसित भी हो जाय तो वह बीमारी प्राणघातक नहीं होती।

२. योगियों के कथनानुसार रुद्राक्ष की माला धारण करने से प्राणतत्व नियमित होता है। जिससे कई प्रकार के कष्ट, मानसिक कष्ट जैसे—उन्माद, अपस्मार, भूतबाधा, प्रेतबाधा, ग्रह बाधा आदि मानसिक रोग व शारीरिक रोग नष्ट होते हैं।

३. कफनिःसारक गुण होने के कारण बालकों की छाती में कफ शुष्क होकर चिपक जाय जिससे श्वांस कष्ट आक्षेप धनुर्वात आदि जैसा लक्षण उत्पन्न होता है। उसकी दशा शोचनीय हो जाती है। उस दशा में रुद्राक्ष के दाने के महीन चूर्ण को शहद के साथ या दाने के साथ पत्थर पर चन्दन की तरह घिसकर ५-५ मिनट पर शहद के साथ चटाने से तथा ऊपर से माता का दूध पिलाने से कफ ढीला होकर वमन के द्वारा कफ निकलकर बालक को सभी कष्टों से तत्काल आराम मिलता है।

४. दोनों प्रकार के रक्त चाप (उच्च व निम्न) में भी यह धारण करने मात्र से ही अच्छा प्रभाव दिखाता है। ऐसी सर्वसाधारण की मान्यता है।

५. अन्य हृदय विकार में भी इसे घिसकर शहद के साथ चटाने से लाभ मिलता है।

६. रुद्रक (Elaeocarpus tuberculatus तथा Monocera tuberculata) के त्वक् क्वाथ को पित्तविकार व रक्तवमन में देते हैं। फल को संधिवात, मोती ज्वर (Typhoid fever) और मृगीरोग में देते हैं।

७. हृदय रोग व रक्तचाप में पाँच मुखी रुद्राक्ष को शाम को मिट्टी पात्र में स्वच्छ जल में डुबो दें व प्रातः बासी मुँह ४० दिन तक पियें तो लाभ होता है। फिर इसे लम्बे लाल धागे में बांधकर गले में पहनना चाहिए जिससे कि हृदय प्रदेश में स्पर्श करता रहे। लाभ होता है।

रुद्राक्ष अपनी स्निग्धता व मधुरता के कारण वात का तथा शीत वीर्य वाला होने के कारण पित्त का शमन करता है। रुद्राक्ष में मानसिक प्रभाव डालने का भी गुण है क्योंकि इसके प्रयोग से मनुष्यों के स्वभाव व व्यवहार में परिवर्तन होते देखा गया है। यकृत पर भी यह कार्य कर पित्त विरेचक का कार्य करता है। अतः यह मानसिक व्याधि, आक्षेपक, अपतंत्रक, अनिद्रा, शिरो रोग, कामला, यकृत् विकार में देते हैं। उच्च रक्त चाप में इसका हिम कषाय का पान कराते हैं या चूर्ण ३-५ ग्राम की मात्रा में ताजे जल से देते हैं। आचार्य प्रियव्रत जी के अनुसार रुद्राक्ष का गुण निम्न प्रकार है यथा—

रुद्राक्षस्य फलास्थि स्यान्मधुरं शीतलं लघु।
मनोविकारशमनं रक्तभारापहं सरम्॥
दाहज्वर प्रशमनं शस्यते वातपैत्तिके।
अपस्मारे तथोन्मादे रक्तभारेऽधिके तृषि॥
मसूरिकायां विस्फोटे श्वासे यकृद्गदेषु च॥ (स्व०)

(आचार्य प्रियव्रत शर्मा)

विमर्श—शास्त्रों में पुराणों में व लोकभावनाओं में रुद्राक्ष की महत्ता व उपयोगिता को तथा गुणों को दर्शाया गया है कि इसे साक्षात् भगवान शिव से तुलना ही नहीं अपितु साक्षात् शिव ही माना गया है और एक ईश्वर में जिस प्रकार हम किसी प्रकार के दोषारोपण या छिद्रान्वेषण करना धार्मिक रूप से पाप समझते हैं। ठीक वही दशा रुद्राक्ष के सम्बन्ध में भी है तो शास्त्रों के अनुसार रुद्राक्ष को अपरम्पार

गुणवान व महत्वपूर्ण होने का वर्णन होने के कारण हमें कुछ कहने को रह ही नहीं जाता है। यथा—

> यो वा को वा नरो भक्त्या धारयेल्लज्जयाऽपिवा।
> सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात्।।
> अहो रुद्राक्षमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते।
> तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकुर्याद्रुद्राक्षधारणम्।।

अर्थात् जो कोई भी मनुष्य लज्जा रहित होकर रुद्राक्ष को धारण करता है वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है तथा सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करता है। अहो! मैं रुद्राक्ष की महत्ता का वर्णन करने में असमर्थ हूँ अत: इसे सर्व प्रकार से प्रयत्न करके रुद्राक्ष को धारण करना चाहिये।

उपरोक्त गुणों व महत्ता को देखते हुए मेरे मन में एक शंका उत्पन्न होती है कि क्या वास्तव में रुद्राक्ष इतने अद्भुत गुणों से सम्पन्न है जितना कि वर्णन है या "कौवा कान ले गया—कौवा कान ले गया" और हुआ कुछ भी नहीं वाली कहावत है। यहाँ शंका मेरे में इसलिए उत्पन्न हुई है कि मैं दिन रात सैकड़ों हजारों व्यक्तियों को देखता हूँ जो कि रुद्राक्ष धारण किए हुए हैं परन्तु तन पर न वस्त्र है न पेट में रोटी। उनका रुद्राक्ष धारण किये नंगा शरीर मई जून के सूर्य की भयंकर गर्मी में झुलसता है तो बरसात में वर्षा से भीगता है व दिसम्बर जनवरी की शीत लहरी में सिकुड़ता है और बहुतों का शरीर तो ठण्डी से इतना सिकुड़ता है कि सदा-सदा के लिए सिकुड़ कर ठण्डा होकर शान्त हो जाता है। रुद्राक्ष की महत्ता तो वास्तव में तब सिद्ध होती जबकि नंगा भूखा व्यक्ति इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा है उसे रुद्राक्ष धारण करने से अपार सम्पत्ति भले ही न हो पर दो जून की रोटी शरीर ढकने का वस्त्र व सिर छुपाने की एक झोपड़ी ही उसे उपलब्ध हो जाती। रोगी स्वास्थ्य लाभ करता या रुद्राक्ष धारी व्यक्ति

अस्वस्थ नहीं होता, उसका मन-चित्त शान्त होकर धार्मिक कार्यों में, सामाजिक सेवा में लगता परन्तु ऐसा कुछ भी देखने को (रुद्राक्ष धारी व्यक्ति में) नहीं मिलता। यदि किसी रुद्राक्षधारी में मिलता है तो उससे ज्यादा रुद्राक्ष रहित व्यक्तियों में भी मिलता है। एक मुखी रुद्राक्ष के सम्बन्ध में कहा गया है कि इसे खजाने में रखने से यह धन-सम्पत्ति को बढ़ाता है। मुख्य बात तो यह है कि एक मुखी रुद्राक्ष के एक दाने का मूल्य ही इतना है कि गरीब उसे ले ही नहीं सकता तो उसकी सम्पत्ति को बढ़ाकर धनी बनाने से रहा। इसे तो धनी व्यक्ति ही ले सकता है और चार-सौ-बीसी कर तथा अन्य गलत तरीकों से अपने धन को बढ़ा सकता है क्योंकि पुराणों में लिखा ही है कि रुद्राक्ष धारण करने से सभी प्रकार के पाप कर्मों, हत्या आदि के दोषों से मुक्ति मिल जाती है यहाँ तक कि गुरु-पत्नी के साथ जो कि माँ तुल्य होती है सहवास करने का दोष भी। तो भला रुद्राक्ष धारण कर गलत विधि से धन कमाने में ही क्या दोष है। अतः एक मुखी रुद्राक्ष धनी व्यक्ति को ही और धनी कर सकता है निर्धनों को नहीं। निर्धन को तो और कंगाल बना देगा। ठीक वैसे ही जैसे हिन्दू के भगवान राजघराने में ही विशेष रूप से अवतार लेना पसन्द करते हैं क्योंकि वहाँ राजसी ठाठ-बाट, ऐशो-आराम मिलता है निर्धनों के यहाँ नहीं तथा दूसरे सम्प्रदायों में भगवान ने निर्धनों के यहाँ दीन दुःखियों के यहाँ अवतरित होकर जुल्म ढाने वालों से संघर्ष किया है। जैसे—ईसा मसीह, हजरत मुहम्मद।

तीन मुखी रुद्राक्ष को भी अग्नित्रय स्वरूप माना गया है तथा कहा गया है कि तीन मुखी रुद्राक्ष को धारण कर अग्नि में प्रवेश करने से अग्नि शीतल होकर शान्त हो जाती है। यथा—

त्रिमुखश्चैव रुद्राक्षोऽप्यग्नित्रयस्वरूपकः।
तद्धारणाच्च हुतभुक् तस्य तुष्यति नित्यशः ॥२६॥

(देवी भागवत्/११ स्कन्ध/अ० ७)

इसी प्रकार चार मुखी रुद्राक्ष को रोग व्याधि को समाप्त कर आरोग्य प्रदान करने वाला कहा गया है । यथा—

चतुर्मुखस्तु रुद्राक्षः पितामहस्वरूपकः ।
तद्धारणान्महाश्री मान्महदारोग्यमुत्तमम् ।।२७।।

तथा चौदह मुखी रुद्राक्ष को भी सभी प्रकार के व्याधियों को हरण करने वाला, आरोग्य प्रदान करने वाला कहा गया है । यथा—

चतुर्दशमुखश्चाऽक्षो रुद्रनेत्रसमुद्भवः ।
सर्वव्याधिहरश्चैव सर्वारोग्यप्रदायकः ।।२६।।

(देवी भागवत/११ स्कन्ध/अ० ७)

ऊपर के श्लोकों में जैसे कि तीन मुखी रुद्राक्ष को धारण कर आग में प्रवेश होने से आग शान्त हो जाती है और व्यक्ति आग से झुलसता तक भी नहीं तथा चार मुखी व चौदह मुखी रुद्राक्ष के धारण करने से रोग-व्याधि नष्ट हो जाता है। अव ये परीक्षण करने योग्य विषय हैं कि क्या वास्तव में तीन मुखी रुद्राक्ष से आग शान्त हो जाती है और चार मुखी चौदह मुखी रुद्राक्ष से रोग व्याधि नष्ट हो जाता है ।

दूसरी वात यह विचार करने योग्य है कि जिस प्रकार नव ग्रहों की शान्ति के लिये नव रत्न जैसे हीरा, पन्ना, मोती, पुखराज, माणिक, मूंगा, गोमेद, लहसुनिया और नीलम होते हैं जो कि हर रोग के लिये अलग अलग होता है । प्रत्येक रत्न प्रत्येक व्यक्ति के लिये उपयुक्त नहीं होता । क्या इसी प्रकार रुद्राक्ष के विषय में तो नहीं है कि यह रुद्राक्ष भी हर व्यक्ति पर प्रभावशाली न होता हो ।

।। ॐ नमः शिवाय ।।

भस्म और त्रिपुण्ड्र

जिस प्रकार शैव भक्तों के लिये रुद्राक्ष एक आवश्यक प्रतीक माना गया है। इसे शिवभक्तों को माला न सही एक ही रुद्राक्ष क्यों न हो धारण करना आवश्यक है। उसी प्रकार भस्म को भी शैव सम्प्रदाय वालों के लिये रुद्राक्ष से कम महत्व नहीं दिया गया है। अतः शिव भक्त रुद्राक्ष के साथ साथ निश्चय ही भस्म व त्रिपुण्ड्र ललाट में धारण करते हैं। इसी कारण हमने रुद्राक्ष के साथ ही साथ भस्म का भी संक्षिप्त वर्णन किया है तथा कुछ अंश बिल्व पत्र के सम्बन्ध में भी दिया गया है।

भस्म

निरुक्ति भस्म

शब्दकल्पद्रुम

भस्म—(न्) क्ली, (बमस्तीति, भस् भर्त्सन—दीप्तयोः+सर्व-धातुभ्योः+सर्वधातुभ्यो मनिन्।" इतिमनिन्। उणा० ४/१४४/दग्ध काष्ठादि विकारः।)

"शिवाङ्ग भूषण भस्म विभूतिर्भूतिरस्य तु।"

(इतिशब्द रत्नावली)

तद्भस्म कामदेव शरीर रजम्—भस्म को कामदेव के शरीर का रज कहा गया है।

तथा इसके महत्व को बताते हुए **इत्याहिकतत्वम्** में कहा गया है कि बिना भस्म के, बिना त्रिपुण्ड्र बिना रुद्राक्ष के माला को धारण किये शिव का पूजन करना व्यर्थ है। यथा—

बिनाभस्म बिनात्रिपुण्ड्रेण बिनारुद्राक्षमालया।
पूजितोऽपि महादेव न स्यात्तस्य फलप्रदः॥

(इत्याहिक तत्वम्)

पुनः कहा गया है कि—

अम्भसा हेमरूप्यायः कांस्यं शुध्यति भस्मना।
अम्लैस्ताम्रं च रैत्यं च पुनः पाकेन मृण्मयम्॥

(इति शुद्धितत्वम्)

देवी भागवत् में तो यहाँ तक ऐतिहासिक घटना का वर्णन है कि जिससे प्रतीत होता है कि भस्म को धारण करना दूर मात्र स्पर्श व दर्शन से भी पापों से मुक्ति होकर नरक भोग से छुटकारा मिलता है।

घटना इस प्रकार है—एक बार अति प्राचीन काल में महर्षि तपस्वी दुर्वासा ऋषि पितृलोक में गये। वहाँ भगवान शिव व माँ पार्वती के साथ बैठे वार्तालाप कर रहे थे कि उनके पास दुर्वासा जी भस्म व त्रिपुण्ड्र तथा रुद्राक्ष माला धारण किये हुए पहुँच कर भगवान शिव से वार्ता करने लगे कि उसी वक्त कुम्भी-पाक नामक तालाब में से घोर करुण-क्रन्दन, चिल्लाने बिलबिलाने की, कष्ट व कठोर यातना पाने जैसी आवाज आ रही थी। इन आवाजों को सुनकर मुनि का करुण हृदय दुःखी होकर द्रवित हो उठा। अतः उन्होंने भगवान शिव की आज्ञा प्राप्त कर कुम्भी पाक में झांक कर देखा। देखा यह कि वहाँ यमराज के दूत मृतात्माओं को कष्ट दे रहे हैं। किसी को गरम तेल के कड़ाहे में डाल रहे हैं तो किसी पर कोड़े की मार तो किसी पर गरम पानी डालकर अर्थात् नाना प्रकार से कष्ट दे रहे थे। कोई मवाद के भरे तालाव में डूब उतरा रहा था ऊपर उसमें बिलबिलाते कोड़े काट कर कष्ट पहुँचा रहे थे। यह देखकर महर्षि को दया आई और उनके ललाट से भस्म झड़कर कुम्भीपाक में गिर पड़ा। भस्म के कुम्भी पाक में गिरते ही कुम्भी पाक के अन्दर का सारा दृश्य ही बदल गया। जो कष्ट पा रहे थे पाप से मुक्त हो सुख पाने लगे। मवाद का तालाब शुद्ध जल का हो गया। दुर्गन्धित वातावरण की जगह सब सुगन्धमय ही हो गया। वह नरक का स्थान स्वर्ग बन गया। यह देखकर देवता लोग आश्चर्यचकित हो शिव के पास आकर इसका कारण पूछा। भगवान शिव ने कहा--यह सब ऋषि दुर्वासा के माथे से गिरे भस्म का प्रभाव है। अब यह स्थान (कुम्भी पाक) स्वर्ग प्राप्ति का स्थान हो गया। इस तालाब में जो भी स्नान करेगा वह मोक्ष को प्राप्त करेगा। अन्त में यमराज ने वहाँ से अति ही दूर पापियों को सजा देने के लिए दूसरा कुम्भी पाक बनाया। फिर यह स्थान पितृलोक मोक्ष प्राप्ति स्थान नामक तीर्थ बन गया।

भस्म व त्रिपुण्ड्र

शैव मतावलम्बियों को और शाक्त मतावलम्बियों को रुद्राक्ष एक प्रतीक रूप में धारण करना जितना आवश्यक है उतनी ही आवश्यक भस्म व त्रिपुण्ड्र को धारण करना भी है। भस्म को परम पवित्र माना गया है। शैव सम्प्रदाय के लोगों को भस्म व त्रिपुण्ड्र लगाने का अति आवश्यक निर्देश दिया गया है; क्योंकि भस्म व त्रिपुण्ड्र इनके सम्प्रदाय का प्रतीक माना गया है। यथा—

माहेश्वराणां लिङ्गार्थं विधत्ते वैदिकी श्रुतिः
भस्मतोद्घूलनञ्चैव तथा तिर्यक्त्रिपुण्ड्रकम्। ८॥

(देवी भागवत/११ स्कन्ध/अ० १३)

साथ ही जिस प्रकार अन्य मतावलम्बियों के लिये रुद्राक्ष धारण करने की मनाही नहीं है। कोई भी व्यक्ति भक्ति से, चाहे शौकिया ही क्यों न पहना हो, सभी पहन सकता है। ठीक उसी प्रकार हर व्यक्ति भक्ति से अभक्ति से, चाहे शौक से वह किसी भी जाति व धर्म का हो भस्म व त्रिपुण्ड्र धारण कर सकता है। जैसा कि देवी भागवत के स्कन्ध ग्यारह के अध्याय तेरह में यह वर्णन मिलता है कि भस्म सभी प्रकार के विज्ञान के निमित्त है। इसे शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, हिरण्यगर्भ और उनके अवतार वरुण आदि सभी देवताओं ने भस्म व त्रिपुण्ड्र को धारण किया है। यहाँ तक कि उमादेवी, लक्ष्मी, सरस्वती, दूसरे आस्तिक देवांगनाओं यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध विद्याधर, मुनि ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व वर्णशंकर सभी ने भस्म व त्रिपुण्ड्र को धारण किया है। यथा—

विज्ञानार्थञ्च सर्वेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ।
शिवेनविष्णुना चैवब्रह्मणावज्रिणातथा ॥
हिरण्यगर्भेण तदवतारैर्वरूणादिभिः ।
देवताभिर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मकम् ॥
उमादेव्या च लक्ष्म्या च वाचा चाऽन्याभिरास्तिकैः ।
सर्वस्त्रीभिर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोधूलनात्मना ॥
यक्षराक्षसगन्धर्वसिद्ध विद्याधरादिभिः ।
मुनिभिश्चधृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यै शूद्रैरपिच सङ्करैः ।
अपभ्रंशधृतं भस्मत्रिपुड्रोद्धूलनात्मना ॥
(देवी भागवत/स्कन्ध ११/अ० १३)

जिस प्रकार एक सुहागिन स्त्री अपने पति के जीवित होने के प्रमाण में, वीर बहादुर होने के प्रमाण में माथे में सिन्दूर, ललाट पर बिन्दिया व ओठों पर लाली लगाती है तथा अपने को सुन्दर वस्त्र आभूषणों से सजाकर नारी नवेली बनी रहती है। अपने को सिन्दूर व बिन्दी आदि प्रतीक से सुहागिन होने का प्रमाण देती है। ठीक उसी प्रकार आस्तिक व्यक्ति भी त्रिपुण्ड्र या अन्य प्रकार के तिलक की छाप अपने ललाट पर लगा कर सम्पूण अङ्गों में भस्म रमा कर ईश्वर के प्रति अपना परम स्नेह होने का, अपने को भक्त होने का प्रमाणित करता है। सिन्दूर और बिन्दिया की तरह उसका त्रिपुण्ड्र व भस्म भी आस्तिक होने का प्रतीक है।

शैव सम्प्रदाय वालों को जो कि शिव की ही पूजा व अर्चना करते हैं उन्हें तो भस्म लगाना नितान्त ही आवश्यक है। क्योंकि कहा गया है कि जिस प्रकार यज्ञ में यज्ञ की सभी सामग्री होते हुए यदि एकमात्र अग्नि न रहे तो यज्ञ शोभा नहीं देता। ठीक उसी प्रकार शिव की पूजा में पूजन की सब सामग्री रहते हुए भस्म के अभाव में वह पूजा शोभा

नहीं देती। वह पूजा निष्फल होती है क्योंकि जो मनुष्य बिना भस्म धारण किये ही पूजन, यज्ञ, तप आदि शुभ कर्मों को करता है वह व्यर्थ होता है। वह मोक्ष का अधिकारी नहीं होता अर्थात् उसे मोक्ष प्राप्त नहीं होता।

ये भस्मधारणं त्यक्त्वा कर्म कुर्वन्ति मानवाः।
तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः................................ ......॥

(वृहज्जाबालोपनिषद्)

भस्म के धारण करने से मन शुद्ध होता है। मन के शोक, सन्ताप, चिन्ता व अन्य मानसिक विकार समाप्त होकर मन में वैराग्य सा भाव उत्पन्न होता है। कोई-कोई तो पूर्ण वैरागी होकर वनवासी जीवन व्यतीत करने लगता है। क्योंकि भस्म हम जितना ही प्रेम से शुद्धचित्त से अपने अंगों में रमाते हैं, भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं उतना ही हमारा मन इस संसार की माया-मोह से दूर होता जाता है और ईश्वर भक्ति में क्रमशः गहनता से जुड़ता जाता है। इस भव जाल से मोक्ष की कामना करते-करते मन वैरागीपन बन जाता है। अतः भस्म पुण्य फल को देने वाला है व अन्यों के भी पापों को नाश करने वाला है। यथा—

शूद्राणांपुण्यदंनित्यमन्येषांपापनाशनम्॥
भस्मनोद्धूलनञ्चैवतथातिर्यक्त्रिपुण्ड्रकम्॥

(देवी भागवत्/स्कंध ११/अ० १३)

भस्म को लगाने से यति लोगों को ज्ञान होता है तथा वनवासियों में वैराग्य उत्पन्न होता है। गृहस्थाश्रम में रहने वालों में धर्म की वृद्धि करता है तथा ब्रह्मचर्याश्रम में रहने वालों को भस्म लगाने से स्वाध्याय की प्राप्ति होती है। यथा—

यतीनांज्ञानदं प्रोक्तं वनस्थानां विरक्तिदम्।
गृहस्थानां मुने तद्धर्मवृद्धिकरं तथा।
ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां स्वाध्यायप्रदमेव च॥

यदि भस्म को मूर्ख या विद्वान दोनों ही प्रेम से भस्म को धारण करते हैं तो उन्हें महादेव सपत्नी दर्शन देते हैं। यथा—

भुनक्ति यत्र भस्माङ्गी मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा।
तत्र भुङ्क्ते महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः ॥१६॥

(देवी भागवत्/स्कंध ११/अ० १३)

आयु को चाहने वाला, महान् ऐश्वर्य को चाहने वाला तथा मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखने वाला जो मनुष्य हो उसको भस्म सदा ही निश्चय ही लगानी चाहिये। यथा—

आयुः कामोऽथवा राजन् भूतिकामोऽथवा नरः॥
नित्यं धारयेद्भस्म मोक्षकामो च वा नरः।

(महाभारत)

जो फल त्रिपुण्ड्र के धारण करने से मिलता है वह फल सभी तीर्थों को करने से भी प्राप्त नहीं होता। तथा दान, यज्ञ, धर्म, तीर्थ यात्रा सभी का लाभ मिलता है। इसलिए भी भस्म व त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। यथा—

नतीर्थयात्रा पुण्यं त्रिपुण्ड्रेन च लभ्यते।
दानं यज्ञाश्च धर्माश्चतीर्थयात्राश्च नारद॥

(देवी भागवत/स्कन्ध ११/अ० १३)

द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य) या अन्य जाति का कोई भी व्यक्ति यदि शुद्ध मन से भस्म व त्रिपुण्ड्र को धारण करता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो वह शंकर को अपने वशीभूत कर रखा हो तथा वह सभी आश्रमों को त्याग कर तथा अपनी सभी क्रियाओं को लुप्त कर शिवलोक में लीन हो जाता है। यथा—

द्विजातिर्वाऽन्यजातिर्वा शुद्धचित्तेन भस्मना।२८॥
धारयेद्यस्त्रिपुण्ड्राङ्कं रुद्रस्तेन वशीकृतः।
त्यक्तसर्वाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपिसः ॥२६॥

(देवी भागवत/स्कन्ध ११/अ० १३)

जो व्यक्ति भस्म में ही शयन करता है, भस्म में ही रमा रहता है, वह व्यक्ति आत्मनिष्ठ है तथा उसे भूत, प्रेत, पिशाच व कठिन से कठिन भयंकर रोग भी उसे नहीं सताते। यह अर्थात् भस्म प्रकाशमान होने के कारण भसित कहलाता है तथा पाप के भक्षण करने के कारण भस्म कहलाता है। भस्म व त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी प्रकार के पापों का नाश का कारण तथा दुःख का निवारण करने वाला होता है। अन्त्यज, अधम, मूर्ख व पण्डित ये जिस किसी स्थान में देश में विभूति अर्थात् भस्म को विधिपूर्वक धारण कर निवास करता है उसमें सदा-शिव पार्वती सहित सभी भूत गणों को लिए सब तीर्थों से संयुक्त होकर उसके समीप में निवास करते हैं। जो शिव के पांच मंत्र पवित्र हैं, भस्म शिव के अङ्ग में विभूषित है तथा जिनके ललाट पर त्रिपुण्ड्र लगा हुआ है उससे देव के लिखे खोटे अक्षर भी मिट जाते हैं। यथा—

ध्वंसनं सर्वदुःखानां सर्वपापविशोधनम्।
अन्त्यजो वाऽधमो वापि मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा॥३३॥
यस्मिन्देशे वसेन्नित्यंभूतिशासनसंयुक्तः।
तस्मिन्सदाशिवः सोमः सर्वभूतगणैर्वृतः।
सर्वतीर्थैश्चसंयुक्तः सान्निध्यं कुरुते सदा॥३४॥
एतानि पञ्चशिवमन्त्रपवित्रितानि भस्मानिकामदहनाङ्गविभूतानि।
त्रैपुण्ड्रकाणि रचितानि ललाटपट्टे लुम्पन्तिदैवलिखितानि
दुरक्षराणि॥३५॥

(देवी भागवत/स्कन्ध ११/अ० १३)

इस प्रकार भस्म व त्रिपुण्ड्र का हमारे हिन्दू सनातनी मताव-लम्बियों विशेष कर शैव लोगों में बहुत ही आवश्यक व महत्वपूर्ण है अतः हम इसका संक्षिप्त वर्णन कर रहे हैं।

शिरोव्रत

शिरोव्रत को शिवव्रत या पाशुपत भी कहते हैं। शिरोव्रत से विहिन पुरुष सभी प्रकार के धर्मों से रहित होता है। वह पापकर्मा के तुल्य होता है। कोई व्यक्ति कितना ही बड़ा विद्वान क्यों न हो अर्थात् वह अनेक विद्याओं का अधिकारी ही क्यों न हो। यदि वह शिरोव्रत नहीं किया है तो उसे धर्म विहीन ही जानना चाहिये। यथा—

शिरोव्रतविहीनस्तु सर्वं धर्मविवर्जितः।
अपि सर्वासु विद्यासुसोऽधिकारीनसंशयः ।।९।।

(देवी भागवत/स्कंध ११/अ० ९)

शिरोव्रत का वहुत ही महत्व बताया गया है। उदाहरण के लिये शिरोव्रत पापरूपी जंगल को दावानल की तरह नष्ट कर डालता है। सभी विद्याओं की सिद्धि देने वाला है। इसलिए इसे विधिपूर्वक व श्रद्धापूर्वक आचरण करना चाहिये ।।१०।। अथर्वण की श्रुति सूक्ष्म से सूक्ष्म अर्थ को प्रकाशित करने वाली है अर्थात् गूढ़ से गूढ़ ज्ञान के भेद को बताने वाली है। अतः शिरोव्रत धर्म में जो कुछ भी वर्णित है उसे भली प्रकार श्रद्धापूर्वक आचरण करना चाहिये। अग्नि इत्यादि छः मन्त्र जैसे—अग्निरिति भस्म, जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, व्योमेति भस्म, सर्वंहवाइदं भस्म व सद्योजात इन अथर्वण में कहे छः मंत्रों द्वारा भस्म को सभी अङ्गों में लगाना चाहिये। इसे ही शिरोव्रत कहते हैं। यथा—

शिरोव्रतमिदं कार्यं पापकान्तारदाहकम्।
साधनं सर्वविद्यानां यतस्तत्सम्यगाचरेत् ।।१०।।
श्रुतिराथर्वणी सूक्ष्मा सूक्ष्मार्थस्य प्रकाशिनी।
यदुवाच व्रतं प्रीत्या तन्नित्यं सम्यगाचरेत् ।।११।।
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः षड्भिः शुद्धेन भस्मना।
सर्वाङ्गोद्धूलनं कुर्याच्छिरोव्रतसमाह्वयम् ।।१२।।

त्रिपुण्ड्र

जाबाल श्रुति में सम्मान के साथ श्रद्धान्वित होकर भक्ति से ओत प्रोत होकर पूर्ण आस्था व विश्वास के साथ त्रिपुण्ड्र धारण करने के लिये निर्देशित किया गया है। त्रिपुण्ड्र को त्र्यम्बक मन्त्र व तारक मन्त्र से लगाना चाहिये। गृहस्थाश्रम में रहने वाले व्यक्ति को नित्य निपुण्ड्र धारण करना चाहिये। त्रिपुण्ड् तीन बार **ॐकार**, **ॐकार** **ॐकार** अथवा हंस मन्त्र से धारण करना चाहिये। तथा भिक्षुक को भी नित्य त्रिपुण्ड् धारण करना चाहिये। त्र्यम्बक मंत्र भी **ॐ नमः शिवाय** मंत्र के ही समान है। यथा—

त्रिपुण्ड्रधारण प्रोक्तं जाबालैरादरेण तु।
त्र्यम्बकेन मन्त्रेण सतारेण शिवेन च ।।२२।।
त्रिपुण्ड्रन्धारयेनित्यं गृहस्थाश्रममाश्रितः।
ओङ्कारेण त्रिरुक्तेन सहंसेनत्रिपुण्ड्रकम् ।।२३।।
धारयेद्भिक्षुको नित्यमिति जाबालिकीश्रुतिः।
त्रियम्बकेन मन्त्रेणप्रणवेन शिवेन च ।।२४।।

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अध्याय ९)

गृहस्थ व वनवासी व्यक्तियों को भी त्रिपुण्ड् धारण करना चाहिये। मेधावी आदि ब्रह्मचारियों को भी त्रिपुण्ड् धारण करना चाहिये। भस्म तथा जल को एक साथ मिलाकर उससे त्रिपुण्ड् धारण करना चाहिये। ब्राह्मण को विधिपूर्वक भस्म द्वारा त्रिपुण्ड् को धारण करना चाहिये। ललाट में भस्म से तिर्यक् रूप में धारण किया त्रिपुण्ड् भगवान महादेव जी से धर्म संगत होता है। अतः त्रिपुण्ड् धर्म को नित्य ही ब्राह्मण को धारण करना चाहिये। यथा—

गृहस्थश्च वानप्रस्थो धारयेच्चत्रिपुण्ड्रकम्।
मेधावात्यादिनावाऽपि ब्रह्मचारी दिने दिने ।।२५।।
भस्मनासजलेनाऽपिधारयेच्च त्रिपुण्ड्रकम्।
ब्राह्मणोविधिनोत्पन्नस्त्रिपुण्ड्भस्मनैवतु ।।२६।।

ललाटे धारयेन्नित्यं तिर्यग्भस्मावगुंठनम् ।
"महादेवस्य सम्बन्धात्तद्धर्मेऽप्यस्ति संगतिः ।"
सम्यक् त्रिपुण्ड्रधर्मं च ब्राह्मणोनित्यमाचरेत् ॥२७॥
(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० ६)

त्र्यम्बक मंत्र, तारक मंत्र, पञ्चाक्षर मंत्र या प्रणव मंत्र से अभिमन्त्रित कर त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। ललाट, हृदय, भुजाओं में व सन्यासाश्रम में स्थित हुआ व्यक्ति को नित्य त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये।

त्र्यम्बकेन मन्त्रेण सतारेण तथैव च।
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण प्रणवेन तथैव च ॥३०॥
ललाटे हृदये चैव दोर्द्वन्द्वे च महामुने!
त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं संन्यासाश्रममाश्रित ॥३१॥
(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० ६)

'ॐ नमः शिवाय' मंत्र से सेवा में निरन्तर तत्पर रहने वाले शूद्र को भी अपने शरीर पर भस्म व मस्तक पर नित्यप्रति श्रद्धा व भक्ति भाव से त्रिपुण्ड्र को धारण करना चाहिए। और अन्य सभी को विना मन्त्र के ही पूरे शरीर में भस्म व मस्तक पर त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये। यथा—

नमोऽन्तेन शिवेनैव शूद्रः शुश्रूषणे रतः।
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च नित्यंभक्त्यासमाचरेत् ॥३३॥
अन्येषामपि सर्वेषां विनामन्त्रेण सुव्रता।
उद्धूलनंत्रिपुण्ड्रञ्च कर्तव्यं भक्तितोमुने ॥३४॥
(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० ६)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये द्विज कहलाते हैं। इन्हें विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र अवश्य ही धारण करना चाहिए। यथा—

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याश्च एते सर्वे द्विजाः स्मृताः।
तस्माद्द्विजैः प्रयत्नेन त्रिपुण्ड्रं धार्यमन्वहम् ॥२॥
(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १५)

ब्राह्मण को त्रिपुण्ड्र धारण करना आवश्यक

जिसका यज्ञोपवीत हो गया हो उसी व्यक्ति को ब्राह्मण कहते हैं ! इस कारण श्रौत ब्राह्मणों को त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये । बिना भस्म को धारण किये गायत्री का जप भी नहीं करना चाहिये । यथा—

यस्योपनयनं ब्रह्मन् सएवद्विजउच्यते ।
तस्माच्छ्रोतंद्विजैःकार्यं त्रिपुण्ड्रस्यचधारणम् ।।३।।
न गायत्र्युपदेशोऽपि भस्मनो धारणं बिना ।
ततो धृत्वैवभस्माङ्गे गायत्री जपमाचरेत् ।।५।।

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १५)

बिना विभूति धारण किये कोई भी सत्कर्म व धार्मिक अनुष्ठान नहीं करना चाहिये । यथा—

विभूति धारणं त्यक्त्वा यः सत्कर्म समाचरेत् ।।४।।

बिना अग्नि से उत्पन्न हुए भस्म को ललाट पर धारण किये किसी भी व्यक्ति को गायत्री ग्रहण करने का अधिकार नहीं है । यथा—

न तावदधिकारोऽस्ति गायत्री ग्रहणे मुने ।
यावन्न भस्मभाला दौधृतमग्निसमुद्भवम् ।।७।।

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १५)

जिस ब्राह्मण के भी मस्तक पर अभिमन्त्रित भस्म दिखाई देता है वही विद्वान ब्राह्मण है । जिसके पास मणि के समान मूल्यवान् भस्म संग्रहित है अर्थात् जिस व्यक्ति के पास परमपवित्र भस्म सम्मानित रूप से भक्तिपूर्वक संग्रह किया गया है वही ब्राह्मण है । यथा—

मन्त्रपूतं सितं भस्म ललाटे परिवर्तते ।
स एव ब्राह्मणो विद्वान्सत्यंसत्यंममयोच्यते ।।९।।

यस्यास्तिसहजाप्रीतिर्मणिवद्भस्मसङ्ग्रहे ।
स एव ब्राह्मणोब्रह्मन्सत्यंसत्यंमयोच्यते ॥१०॥
(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १५)

जिस ब्राह्मण के पास मणि के समान भस्म संग्रहोत नहीं है, जिसके ललाट पर भस्म नहीं है, वह ब्राह्मण नहीं है अपितु चाण्डाल तुल्य है। उसका दर्शन करना भी पाप है। जिस ब्राह्मण को त्रिपुण्ड्र व भस्म में आस्था नहीं है, प्रेम नहीं है, वह ब्राह्मण नहीं अपितु अन्त्यज है। जो ब्राह्मण भस्म धारण किये बिना फल आदि का भक्षण करते हैं वह सब नरक में ही जाते हैं। तथा जो व्यक्ति बिना विभूति धारण किये शंकर भगवान की उपासना करता है, पूजा करता है, वह व्यक्ति भाग्यहीन, शिव से द्वेष रखने वाला होता है और वही द्वेष नरक को देने वाला होता है। यथा—

नयस्यसहजाप्रीतिर्मणिवद्भस्मसङ्ग्रहे ।
स चाण्डालइतिज्ञेयोजन्मजन्मान्तरेध्रुवम् ॥११॥
न यस्य सहजा प्रीतिस्त्रिपुण्ड्रोद्धूलनादिषु ।
स चाण्डाल इति ज्ञेयः सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥१२॥
ये भस्मधारणं त्यक्त्वा भुञ्जन्ते च फलादिकम् ।
ते सर्वेनरकं घोरंप्राप्नुवन्ति न संशयः ॥१३॥
विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः शिवं पूजयिष्यति ।
स दुर्भगः शिवद्वेष्टा स द्वेषोनरकप्रदः ॥१४॥
(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १५)

जो व्यक्ति बिना भस्म व त्रिपुण्ड्र को धारण किये शैव संध्या करता है; वह प्रायश्चित को प्राप्त होता है। यथा—

प्रत्यवैति न सन्देहः सन्ध्याकृदभस्म वर्जितः ।
सम्पादनीयं यत्नेन श्रौतंभस्मसदाद्विजं ॥१६॥
(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १५)

भस्म

भस्म प्रकाशमान होने के कारण भासित व पाप के भक्षक होने के कारण भस्म कहलाती है। यथा—

भस्मनिष्ठस्यसान्निध्याद्विद्रवन्तिनसंशयः ।
भासनाद्भसितंप्रोक्तंभस्मकल्मषभक्षणात् ।।३२।।

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १४)

रुद्राग्नि के परमवीर्य को भस्म कहते हैं। यथा—

रुद्राग्नेर्यत्परं वीर्यंतद्भस्म परिकीर्तितम् ।।३२।।

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १३)

भस्म तीन प्रकार का होता है।

१. जो गोबर जमीन पर नहीं गिरने पाता उसे हाथ में ही ग्रहण कर लिया जाता है और सद्योजातादि पञ्च ब्रह्म मन्त्रों से दग्ध किया जाय वह शान्ति करने वाला होता है। यथा—

गोमयंयोनिसम्बद्धनद्धत्वेनैव · गृह्यते ।
ब्राह्मैर्मन्त्रैस्तुसन्दग्धंतच्छान्तिकृदिहोच्यते ।।३।।

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० ११)

२. जो मनुष्य सावधान होकर गोबर को ग्रहण करता है अर्थात् उसे अन्तरिक्ष में ही ग्रहण कर षड़गां के मंत्रों से भस्म करना चाहिये। यह भस्म पुष्टिकर होती है। यथा—

सावधानस्तु गृह्णीयान्नरो वै गोमयन्तु यत् ।
अन्तरिक्षे गृहीत्वा तत्षडङ्गेन दहेदतः ।।४।।

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० ११)

३. जो होम मंत्र से भस्म किया जाय। वह कामद भस्म है अर्थात्
ामनादायक है। यथा—

पौष्टिक तत्समाख्यातं कामदञ्च ततः शृणु।
प्रसादेन दहेदेतत्कामदं भस्म कीर्तितम्॥५॥

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० ११)

कामनापूर्ति के इच्छुक व्यक्ति ब्राह्मण श्वेत वर्ण के गाय की,
त्रिय लाल वर्ण के गाय की, वैश्य पीतवर्ण के गाय की तथा शूद्र कृष्ण
र्ण के गाय की प्रातः प्रातः गौशाला में जाकर गौमाता को नमस्कार
र पूर्णिमा, अमावस्या या अष्टमी तिथि में गोबर को ग्रहण करना
ाहिए। फिर ग्रहण किये गये गोबर को **होम मन्त्र** से हाथ में ग्रहण कर
ृदयेन मन्त्र से उसकी पिण्डी बनानी चाहिये। तथा अच्छे साफ-सुथरे
थान में सूर्य की किरणों में सुखानी चाहिये। **प्रसाद मन्त्र** से भूसी या
ुसा उसमें लपेटना चाहिये। वन की अग्नि श्रोत्रिय के स्थान की अग्नि
ें शिव के **बीज मन्त्र** से अभिमन्त्रित कर अग्नि में डाल कर हवन
रना चाहिये। फिर उस भस्म को अग्नि कुण्ड से ग्रहण करना
ाहिये। यथा—

प्रातरुत्थाय देवर्षे भस्मव्रतपरः शुचिः।
गवां गोष्ठेषु गत्वा तु नमस्कृत्वातु गोकुलम्॥७॥
गवांवर्णानुरूपाणांगृह्णीयाद्गोमयंशुभम्।
ब्राह्मणस्यचगौःश्वेतारक्तागौक्षत्रियश्च॥८॥
पीतवर्णा तु वैश्यस्य कृष्णा शूद्रस्य कथ्यते।
पौर्णमास्याममावास्यामष्टम्यां वा विशुद्धिः॥९॥
प्रासादेन तु मन्त्रेणगृहीत्वागोमयंशुभम्।
हृदयेन तु मन्त्रेण पिंडीकृत्यतुगोमयम्॥१०॥
रविरश्मिसुसन्तप्तं शुचौदेशे मनोहरे।
तुषेणवा वुसैर्वापि प्रासादेन तु निक्षिपेत्॥११॥

अग्युण्द्भवमग्निं वा श्रोत्रियागारजं तु वा ।
तदग्नौ विन्यसेत्तञ्च शिवबीजेन मन्त्रतः ।।१२।।

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० ११)

तत्पश्चात् भस्म में केतकी, पाटल, खस, चन्दन और केशर आदि अनेक सुगंधित द्रव्य **सद्योजात मन्त्र** का पाठ करते हुए डालना चाहिये। सर्वप्रथम जल से स्नान करना चाहिये। तत्पश्चात् भस्म से सर्वांग स्नान करना चाहिये। यदि किसी कारणवश जल से स्नान करना कठिन हो तो मात्र भस्म से ही स्नान करना चाहिये। फिर भी इस दशा में भी भस्म लगाने से पूर्व हाथ, पैर, मुख धोने के उपरान्त ही भस्म लगानी चाहिये। यथा—

निक्षिपेत्तत्र पात्रे तु सद्यो मन्त्रेणशुद्ध धीः ।
जलस्नानम्पुराकृत्वा भस्मस्नानमतः परम् । १४।।
जलस्नाने त्वशक्तश्चभस्मस्नानंसमाचरेत् ।
प्रक्षाल्यपादौहस्तौ च शिरश्चेशानमन्त्रतः ।।१५।।

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० ११)

गौण भस्म

गौण भस्म भी अज्ञान को नाश करने वाला तथा ज्ञान को देने वाला है। जिस प्रकार अग्नि होत्र की भस्म, विरजा होम के (संन्यास के समय के होम का विशेष प्रचार है) उपासन अग्नि से उत्पन्न, स्मार्त- विवाहाग्नि से प्रगट समिधा की अग्नि से उत्पन्न भस्म उत्तम है। तथा पञ्चाग्नि से दावानल तथा अग्निहोत्र से उत्पन्न हुई भस्म तीनों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शेष सभी के लिए भी कल्याणकारी है। यथा—

आग्नेयं गौणमज्ञानध्वंसकं ज्ञान साधकम्।
गौणं नानाविधं विद्धि ब्रह्मन्ब्रह्मविदाम्बर ॥१॥
अग्निहोत्राग्निजं तद्वद्विरजानलजं मुने।
औपासनसमुत्पन्नं समिदग्निसमुद्भवम् ॥२॥
पचनाग्निसमुत्पन्नं दावानल समुद्भवम्।
त्रैवर्णिकानां सर्वेषामग्निहोत्रसमुद्भवम् ॥३॥

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १०)

अतः विरजाभस्म तीनों वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य) को धारण करना चाहिये। स्मर्ताग्नि गृहस्थों को धारण करना चाहिये। समि- धाग्नि ब्रह्मचारियों को, शूद्रों को, श्रोत्रिय के स्थान की पचनाग्नि भस्म को धारण करना चाहिये। और सभी को दावानल की भस्म धारण करनी चाहिये। विरजानल की उत्पत्ति चित्रायुक्त पूर्णमासी, पुण्यकाल में पुण्यदेश में हो। उसी विरजानल को ग्रहण करना चाहिये। यथा—

विरजानजञ्लचैव धार्यं भस्ममहामुने।
औपासनसमुत्पन्नं गृहस्थानां विशेषतः॥

समिदग्नि समुत्पन्नं धार्यम्वै ब्रह्मचारिण ।
शूद्राणां श्रोत्रियागारपचनाग्नि समुद्भवम् ।।
अन्येषामपि सर्वेषां धार्यंवावानलोद्भवम् ।
कालश्चित्रापौर्णमासी देश: स्वीय: परिग्रह: ।।

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १०)

भस्म से स्नान करने वाले मनुष्यों के महामारी का भय नहीं रहता है। यह भस्म शान्ति, पुष्टि और कामना देने वाली तीन प्रकार की कही गयी है। यह आयुष्य, बल, आरोग्य, लक्ष्मी व पुष्टि को बढ़ाने वाली होती है तथा मंगल कार्यों के लिये, सभी के रक्षार्थ सर्व सम्पन्न है। यथा—

आयुष्यं बलमारोग्यं श्रीपुष्टिवर्धनं यत: ।
रक्षार्थं मङ्गलार्थञ्च सर्वसम्पत्समृद्धये ।।३२।।
भस्मस्निग्धमनुष्याणां महामारीभयं न च ।
शान्तिकं पौष्टिकं भस्म कामदञ्चत्रिधाभवे ।।३३।।

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १०)

भस्म धारण करने की विधि

अग्निहोत्र को भस्म या विरजा होम की भस्म आदर से सम्मान पूर्वक ग्रहण कर शुद्ध पात्र में रखना चाहिए। सर्वप्रथम हाथ-पैर धोकर, दो बार आचमन कर भस्म लेकर धीरे-धीरे सद्योजातादि ब्रह्म मंत्रों से ग्रहण करना चाहिये। तीन प्राणायाम करके अग्नि रीति भस्म, जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, वायु रिति भस्म, व्योमेति भस्म, सर्वं हवाइदं मंत्र इन मंत्रों से तीन बार अभिमन्त्रित कर ओ३म् आपोज्योतीर सोमृतम् यह कहकर मंत्रों को उच्चारण करते हुए श्वेत भस्म को पूरे शरीर में लगाना चाहिए। इससे मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है। यथा—

भस्माऽग्निहोत्रजंवाऽथविरजाग्निसमुद्भवम्।
आदरेणसमादाय शुद्धपात्रेनिधायतत् ॥३६॥
प्रक्षाल्य पादौ हस्तौचद्विरा चम्या समाहितः।
गृहीत्वाभस्मतत्पञ्चब्रह्ममन्त्रैः शनैः शनैः ॥३७॥
प्राणायामत्रयंकृत्वा अग्निरित्यादिमन्त्रितं।
तं रेवसप्तभिर्मन्त्रैस्त्रिवारमभिमन्त्रयेत् ॥३८॥
ओमापोज्योतिरित्युक्त्वा ध्यात्वा मन्त्रानुदीरयेत्।
सितेन भस्मनाऽपूर्वं समुद् धूल्य शरीरकम् ॥३९॥
(देवी भागवत्/स्कन्ध ११अ०/ ९)

पुनः भस्म को जल से मिलाकर अग्निरित्यादि मंत्रों से बार-बार मिलाकर शिव का ध्यान करते हुए उर्ध्व मस्तक में लगाना चाहिए। मध्यमा, अनामिका व अंगुष्ठ इनसे सव्य अपसव्य अर्थात् दो अंगुली बाईं ओर से आरम्भ कर दक्षिण भाग तक दो रेखा करनी चाहिये।

अंगूठे से दक्षिण भाग से प्रारम्भ कर वाम भाग तक रेखा करनी चाहिये । इस प्रकार त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये । यथा—

संयोज्य भस्मना तोयमग्निरित्यादिभिः पुनः ।
विमृज्य साम्बं ध्यात्वा च समुद्धूल्योर्ध्वमस्तकम् ॥४१॥
ते च भावनया ब्रह्मभूतेन सितभस्मना ।
ललाटवक्षः स्कन्धेषु स्वाश्रमोचितमंत्रात् ॥४२॥
मध्यमानामिकाअंगुष्ठैरनुलोमविलोमतः ।
त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं त्रिकालेष्वपिभक्तितः ॥४३॥

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० ६)

ब्राह्मणों को यत्नपूर्वक विधिवत् भस्म धारण करनी चाहिए । ब्राह्मणों को अपने दाहिने हाथ से मध्य की तीन अंगुली से त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिए । त्रिपुण्ड का छः अंगुल का प्रमाण है तथा दोनों नेत्र के प्रमाण पर्यन्त भी मस्तक में दीप्तिमान त्रिपुण्ड्र का प्रमाण है । जो कभी भी भस्म धारण करता है वह निःसन्देह ही रुद्र के समान होता है । अकार अनामिका, उकार मध्यमा, मकर तर्जनी है । इसलिए त्रिपुण्ड्र गुणात्मक है । त्रिपुण्ड्र को मध्यम तर्जनी के अनुलोम से लगाना चाहिए । यथा—

कर्तव्यमपि यत्नेन ब्राह्मणं र्भस्मधारणम् ।
मध्याङ्गुलित्रयेणैव स्वदक्षिणकरस्य तु ॥२२॥
षडङ्गुलायतं मानमपि चाधिकमानकम् ।
नेत्रयुग्मप्रमाणेन भाले दीप्तं त्रिपुण्ड्रकम् ॥२३॥
कदाचिद्भस्मना कुर्यात्सरूद्रोनात्रसंशयः ।
अकारोऽनामिकाप्रोक्त उकारोमध्यमांगुलिः ॥२४॥
मकारस्तर्जनी तस्मात्त्रिपुंड्रं त्रिगुणात्मकम् ।
त्रिपुंड्रमध्यमा तर्जन्यनामाभिरनुलोमतः ॥२५॥

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १५)

अङ्गों में तत्पुरुष मन्त्र से, मुख में अघोर मन्त्र से, हृदय में वामदेव मन्त्र से, नाभि में सद्योजात मन्त्र से, सर्वाङ्ग में भस्म को लगाकर पहले पहने वस्त्र को त्याग कर दूसरा शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये। फिर हाथ-पैर धोकर आचमन करना चाहिए। भस्म यदि लगाना सम्भव न हो तो मात्र त्रिपुण्ड्र ही धारण करना चाहिए। यथा—

सद्योमन्त्रेण सर्वाङ्गं समुद्धूल्य विचक्षणः।
पूर्ववस्त्रम्परित्यज्य शुद्धवस्त्र परिग्रहेत् ॥१७॥
प्रक्षाल्यपादौहस्तौ च पश्चादाचमनंचरेत्।
भस्मनोद्धूलनाभावे त्रिपुण्ड्रं तु विधीयते ॥१८॥
(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० ११)

बुद्धिमान पुरुष को सावधानी पूर्वक बड़ी श्रद्धा के साथ भस्म को लेकर पात्र में रखना चाहिए फिर उसे धारण करना चाहिए। यथा—

भृशात्यत सावधानो धारयेद्भस्म बुद्धिमान।
आदरेण समादाय भस्मपात्रे निधाय तत् ॥

फिर शान्त चित्त वाला होकर हाथ पैर धोकर तीन बार आचमन करना चाहिए। तत्पश्चात् सद्योजातादि मन्त्र 'ॐ सद्यो जातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः भवे भवेनाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥' से भस्म को मुट्ठी में प्रेम से लेना चाहिए। यथा—

प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च त्रिराचम्य समाहितः।
गृहीत्वा भस्मनो मुष्टिं सद्योजातादिभिर्गृ ही ॥

तत्पश्चात् तीन प्राणायाम करके शिवजी का ध्यान करे फिर 'अग्नि' इत्यादिक मन्त्र से तीन बार अभिमन्त्रित करना चाहिए। अग्नि मंत्र इस प्रकार है—

'ॐ अग्निरिति भस्म, ॐ वायुरिति भस्म, ॐ जलमिति भस्म, ॐ स्थलमिति भस्म, ॐ व्योमिति भस्म सर्वं ह वा इदं भस्म।'

प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यात्वा चैव सदाशिवम्।
अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैस्त्रिवारमभिमंत्रयेत् ॥

फिर ईशानमंत्र[1] से भस्म का पाँच भाग करके विधिपूवक मस्तक में 'तत्पुरुषाय'[2] मन्त्र से; मुख पर अघोर मन्त्र[3] से आठ भाग करके हृदय प्रदेश में भस्म को लगानी चाहिए। यथा—

ईशानेन पञ्चधा भस्म विकिरेन्मूर्ध्नि यत्नतः ।

तत्पश्चात् बायें हाथ से कमर के नीचे के देवस्थानों के भेद से और 'सद्योजातं'[4] इस मंत्र से भस्म को आठ भाग करके पैरों में लगाना चाहिए। यथा—

वामेन गुह्यदेशे तु त्रिदशस्थानभेदतः ।
अष्टधा सद्योमंत्रैः पादावेवं प्रयत्नतः ।।

शिर में 'होम' मंत्र से पाँचों अंगुलियों से, शिरोमंत्र "स्वाह' से तीन अंगुली से ललाट में भस्म को लगानी चाहिए। 'सद्योजातमंत्र' से दाहिने कान में, 'वामदेव' मन्त्र से बायें कान में, 'अघोर' मन्त्र से कण्ठ में, मध्यमा अंगुली से स्पर्श करना चाहिए। हृदय को हृदय के द्वारा 'हृदयेनैवनमः' इस प्रकार तीन अंगुली से स्पर्श करना चाहिये। दाहिने भुजा में शिखा मन्त्र से न्यास करना चाहिए। तीन अंगुली से बायें भुजा में तीन अंगुल कवच का न्यास करना चाहिए। 'ईशान' मंत्र से मध्यमा अंगुली से नाभि स्पर्श करना चाहिए। ललाट पर त्रिपुण्ड्र की तीनों रेखायें ऊपर से ब्रह्मा, मध्य की रेखा विष्णु और नीचे की रेखा महेश्वर की प्रतीक हैं। यथा—

---

1. ईशानः सर्व विद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्। ब्रह्माधिपतिः ब्रह्मणो धिपतिर्ब्रह्म शिवो मे अस्तु सदाशिवोम ।
2. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रूद्रः प्रचोदयात् ।
3. अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर घोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्व सर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।।
4. 'सद्योजात' मंत्र का पृष्ठ १०५ पर वर्णन हो चुका है।

पञ्चाङ्गुल्यं न्यसेन्मूर्ध्नि प्रासादेन तु मन्त्रतः ।
त्र्यंगुलैर्विन्यसेद्भाले शिरोमन्त्रेण देशिकः ॥२१॥
सद्येन दक्षिणे कर्णे वामदेवेन वामतः ।
अघोरेणतु कण्ठेच मध्याङ्गुल्या स्पृशेद्बुधः ॥२२॥
हृदयं हृदयेनैव त्रिभिरङ्गुलिभिः स्पृशेत् ।
विन्यसेद्दक्षिणैबाहौशिखामन्त्रेणदेशिकः ॥२३॥
वामबाहौ न्यसेद्धीमान्कवचेनत्रियंङ्गुलैः ।
मध्येन संस्पृशेन्नाभ्यामीशान इति मन्त्रतः ॥२४॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानास्तिस्रोरेखाइतिस्मृताः ।
आद्योब्रह्माततो विष्णुस्तदूर्ध्वन्तु महेश्वरः ॥२५॥
(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० ११)

अन्त्य जातियों सहित जो सभी मंत्र विहीन हैं। वे मनुष्य भी जो कि अदीक्षित हैं बिना मंत्र के भी भस्म को धारण कर सकते हैं। यथा—

सर्वेषामन्त्यजातीनां मन्त्रेण रहितम्भवेत् ।
अदीक्षितं मनुष्याणामपि मन्त्रं बिना भवेत् ॥२८॥
(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० ११)

उर्ध्वपुण्ड्र

उर्ध्वपुण्ड्र विशेष रूप से वैष्णव सम्प्रदाय के लोग लगाते हैं।

उर्ध्वपुण्ड के लिए तट की मिट्टी या बलमीक की मिट्टी या तुलसी के जड़ की मिट्टी को ही लेना चाहिए। अन्य जगह की मिट्टी को नहीं लेना चाहिए।

सिन्धुतीरे च बलमीकेतुलसीमूलमाश्रिते।
मृदएतास्तु संग्राह्या वर्जयेदन्यमृत्तिक ॥८०॥

श्यामवर्ण का उर्ध्वपुण्ड्र शान्ति को प्रदान करने वाला, लालवर्ण का उर्ध्वपुण्ड्र वश्य करने वाला, पीतवर्ण का उर्ध्वपुण्ड्र लक्ष्मी को देने वाला तथा श्वेत वर्ण का उर्ध्वपुण्ड्र धर्म को देने वाला होता है ॥८१॥ यथा—

श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तंवश्यकरम्भवेत्।
श्रीकरं पीतमित्याहुर्धर्मदं श्वेतमुच्यते ॥८१॥

हाथ का अंगूठा पुष्टि को देने वाला, मध्यमा अंगुली आयु को देने वाली, अनामिका अंगुली अन्न को देने वाली तथा प्रदेशिनी अंगुली मुक्ति को देने वाली है। अतः इन अंगुलियों के भेदों से तिलक करना चाहिए। नाखून स्पर्श नहीं करना चाहिए। जलते हुए दीपक के लौ के समान तथा बांस पत्र के आकार का तिलक लगाना चाहिए। यथा——

अंगुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तोमध्यमायुष्करीभवेत्।
अनामिकाऽन्नदानित्यमुक्तिदाचप्रदेशिनी ॥८२॥
एतैरङ्गुलिभेदैस्तु कारयेन्न नखैः स्पृशेत्।
वर्तिदीपःवलिकृति वेणुपत्राकृतिं तथा ॥८३॥

या पद्म की कली के समान प्रयत्न से या मछली के आकार का या

शंख के आकार का उर्ध्वपुण्ड्र को लगाना चाहिए। दश अंगुलि प्रमाण का तिलक परम श्रेष्ठ होता है। नव अंगुल प्रमाण का मध्यम और आठ अंगुल प्रमाण का तिलक निकृष्ट होता है। सात, छः, पाँच अंगुल का तीन प्रकार का तिलक मध्यम होता है। चार, तीन और दो अंगुल का तिलक कनिष्ठ होता है। यथा—

पद्मस्य मुकुलाकारं तथा कुर्यात्प्रयत्नतः।
मत्स्य कूर्माकृतिं वाऽपिशङ्खाकारं ततः परम् ॥८४॥
दशांगुलिप्रमाणं तु उत्तमोत्तममुच्यते।
नवांगुलं मध्यमं स्यादष्टांगुलमतः परम ॥८५॥
सप्तषट्पञ्चभिः पुण्ड्रं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम्।
चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलैः पुण्ड्रं कनिष्ठं त्रिविधं भवेत् ॥८६॥

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १५)

ललाट में केशव की स्थिति, उदर में नारायण की स्थिति, हृदय में माधव की स्थिति, कण्ठ में गोविन्द की स्थिति, उदर के दक्षिण पार्श्व में विष्णु की स्थिति, उसके दूसरे पार्श्व और बाहु के मध्य मधुसूदन की स्थिति, कान में त्रिविक्रम की स्थिति, बायीं कोख में वामन की स्थिति, बायीं भुजा में श्रीधर की स्थिति, दायें कान में हृषिकेश की स्थिति, पीठ में पद्मनाभ की स्थिति, कंधे में दामोदर की स्थिति होती है। इन्हें स्मरण करना चाहिए। इन बारह वासुदेव के नाम का स्मरण कर तिलक करना चाहिए। क्योंकि ये तिलक देवता हैं। यथा—

ललाटे केशवं विद्यान्नारायणमथोदरे।
माधवं हृदि विन्यस्य गोविन्दं कंठकुकूपके ॥८७॥
उदरे दक्षिणे पार्श्वे विष्णुरित्यभिधीयते।
तत्पार्श्वंबाहुमध्ये मधुसूदनमेव च ॥८८॥
त्रिविक्रमं कर्णदेश वामकुक्षौतु तु वामनम्।
श्रीधरं बाहुके वामे हृषिकेशं तुकर्णके ॥८९॥

पृष्ठे च पद्मनाभं तु ककुद्दामोदरं स्मरेत् ।
द्वादशैतानि नामानि वासुदेवेति मूर्धनि ।।९०।।
(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १५)

प्रात:काल व संध्या समय पूजा व हवन के समय विधिवत् इन उपरोक्त नामों का उच्चारण कर उर्ध्वपुण्ड्र को धारण करना चाहिए। क्योंकि उर्ध्वपुण्ड्र धारण करने वाला मनुष्य चाहे अपवित्र, अनाचारी हो या मन में पाप विचार, दुष्ट विचार पालता हो वह फिर भी अन्यों से शुद्ध है। यथा—

पूजाकाले च होम च सायं प्रात: समाहित: ।
नामान्युच्चार्य विधिना धारयेदूर्ध्वपुंड्रकम् ।।
अशुचिर्वाऽप्यनाचारोमनसा पापमाचरेत् ।
शुचिरेवभवेन्नित्यंमूर्ध्नि पुंड्रांङ्कितोनर: ।।९२।।
(देवी भागवत्/स्कन्ध ११ अ०/१५)

जो दो रेखा वाला और मध्य में शून्य स्थित कर विष्णु के पद के समान तिलक करते हैं वे परम एकान्ती भी मेरे चरणों के भक्त हैं। जो हल्दी के चूर्ण जल से संयुक्त कर शूलाकार अमल तिलक करते हैं वे मेरे भक्त हैं। यथा—

एकान्तिनो महाभागा मत्स्वरूपविदोऽमला: ।
सान्तरालान्प्रकुर्वन्ति पुण्ड्रान्विष्णुपदाकृतीन् ।।९४।।
परमैकान्तिनोऽप्येवंमत्पादैकपरायणा: ।
हरिद्राचूर्णसंयुक्तान्छूलाकारांस्तुवाऽमलान् ।।९५।।

अन्य वैष्णव भी जो भक्तिपूर्वक दीप कमल की तरह बांसी के पत्ते के समान अछिद्र तिलक करते हैं तथा जो वैष्णव अच्छिद्र या सच्छिद्र तिलक करते हैं तो भी अच्छिद्र तिलक करने से भी उन्हें कोई विघ्न नहीं होता। यथा—

अन्ये ते वैष्णवाः पुण्ड्रानच्छिद्रानपि भक्तितः ।
प्रकुर्वीरन्दीपपद्मयेणुपत्रोपमाकृतीन् ॥९६॥
अच्छिद्रानपि सच्छिद्रान्कुर्युःकेवलंष्णवाः ।
अच्छिद्रकरणेतेषांप्रत्यवायोनविद्यते ॥९७॥

सभी कार्यों में बुद्धिमान व्यक्ति को उर्ध्वपुण्ड्र, त्रिशूल, वर्तुलाकार या चौकोण तिलक में से किसी न किसी प्रकार के तिलक को अवश्य ही धारण करना चाहिए ।

तस्मात्सर्वेषु कार्येषु कार्यं विप्रस्य धीमतः ।
ऊर्ध्वपुण्डंत्रिशूलञ्च वर्तुलञ्चतुरस्रकम् ॥

वेदनिष्ठ व्यक्ति को अर्द्धचन्द्राकार आकार के तिलक को धारण नहीं करना चाहिए । यथा—

अर्द्धचन्द्रादिकं लिङ्गं वेदनिष्ठो न धारयेत् ।

वेदनिष्ठ पुरुष को अपने मस्तक में भस्म या तिर्यक त्रिपुण्ड्र को छोड़कर और कुछ धारण नहीं करना चाहिए । यदि मोहवश करता है तो वह नारकी है, पापी है । यथा—

ललाटे भस्मनातिर्यक्त्रिपुण्डस्यच धारणम् ।
बिना पुंड्रान्तरं मोहाद्धारयन्नारकीभवेत् ॥

(देवी भागवत्।स्कन्ध ११।अ० १५)

त्रिपुंड्रविधिं भस्मना करोति यो विद्वानब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो यतिर्वा स महापातकोपपातकेभ्यः पूतो भवति स सर्वेषु स्नातो भवति । स सर्वान्वेदानधीतो भवति । स सर्वान्देवाञ्ज्ञो भवति स सततं सकलरुद्र मन्त्रजापी भवति । स सकलभोगान्भुङ्क्ते देहं त्यक्त्वा शिवसायुज्यमेति न स पुनरावर्ततेनस पुनरावर्तन इत्याह भगवान्कालग्नि रुद्रः ।

(कालाग्निरुद्रोपनिषत्)

अर्थात् जो विद्वान, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी, योगी, महापातक व उपपातक सभी विधिपूर्वक भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करता है। वह सभी विद्याओं में स्नात होता है। वह सभी प्रकार विद्याओं को जानने वाला होता है। जो सदा सकलरुद्र के मन्त्रों का जाप करता है वह सभी देवताओं में सम्मानीय होता है। वह सभी प्रकार के भोगों को भोग कर देह त्याग के बाद शिवलोक में भगवान शिव के साथ सायुज्य हो जाता है। इस लोक उस लोक के आवागमन से मुक्त होकर पुनर्जन्म से रहित हो जाता है। इस प्रकार से भगवान कालाग्नि रुद्र ने कहा है।

भस्म व त्रिपुण्ड्र लगाने का महत्व व फल

महत्व—जो मनुष्य त्रिपुण्ड्र धारण नहीं किये होता है वह शमशान के समान पुण्यात्माओं के दर्शन न करने योग्य होता है। तथा भस्म से रहित मस्तक व शिवालय से रहित गाँव को धिक्कार है। बिना शिव पूजन के जन्म व बिना शिवाश्रम के विद्या का धिक्कार है। त्रिपुण्ड्र व शिव की निन्दा करने वाले को धिक्कार है।

श्मशानसदृशं तत्स्यान्नप्रेक्ष्यंपुण्यकृज्जनैः।
धिग्भस्मरहितं भालंधिग्ग्रामम शिवालयम् ॥१७॥
धिगनीशार्चनं जन्म धिग्विद्यामशिवाश्रयम।
त्रिपुंड्रयेविनिन्दन्ति निन्दन्ति शिवमेव ते ॥१८॥

(देवी भागवत्।स्कन्ध ११।अ० १२)

बिना त्रिपुण्ड्र धारण किये वेद, यज्ञ, दान व तप सब व्यर्थ हैं। व्रत उपवास सभी व्यर्थ है। भस्म धारण को त्याग कर मुक्ति की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

अधीतमनधीतञ्च त्रिपुण्ड्रं योनधारयेत्।
वृथा वेदा वृथा यज्ञा वृथा दानं वृथा तपः॥
वृथाव्रतोपवासेनत्रिपुण्ड्रं योनधारयेत्।
भस्मधारणकंत्यक्त्वामुक्तिमिच्छतियः पुमान्॥

शूद्र व अन्त्यजों की भस्म, पापी, दुष्कर्मी की भस्म, द्विज व सदाचारी ब्रह्मचारी को नहीं धारण करना चाहिए ॥३६॥

धृतमेतत्त्रिपुण्डं स्यात्सर्वकर्मसु पावनम्।
शुद्रैरन्त्यजहस्तस्थं न धार्यं भस्म क्वचित्॥३६॥

(देवी भागवत्।स्कन्ध ११।अ० १२)

जो व्यक्ति तीनों संध्याओं में श्वेत भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं वे सभी पापों से रहित होकर शिवलोक को प्राप्त करते हैं। जो योगी पैर से मस्तक तक सर्वाङ्ग भस्म से स्नान करता है और तीनों संध्याओं त्रिपुण्ड लगाता है वह शीघ्र ही योग विद्या को प्राप्त करता है। यथा—(३-४)

सितेन भस्मनाकुर्यात्त्रिसंध्यंयस्त्रिपुंड्रकम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकेमहीयते ।।३।।
योगीसर्वाङ्गकं स्नानपादतलमस्तकम् ।
त्रिसंध्यमाचरेन्नित्यमाशु योगमवाप्नुयात् ।।४।।

(देवी भागवत्।स्कन्ध ११।अ० १४)

जल स्नान करने से लाख गुना अधिक गुण भस्म स्नान का होता है। निश्चय ही सभी तीर्थों के करने से जो पुण्य फल की प्राप्ति होती है उससे अधिक फल की प्राप्ति भस्म लगाने से होती है। यथा—

भस्मस्नानेन पुरुषः कुलस्योद्धारकोभवेत् ।
भस्मस्नानं जलस्नानादसंख्येयगुणान्वितम् ।।५।।
सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।
तत्फलं लभते सर्वं भस्मस्नानान्न संशयः ।।६।।

(देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अ० १४)

जिस प्रकार अग्नि में ईंधन जल जाता है ठीक उसी प्रकार महापातक व उपपातक सभी भस्म स्नान मात्र से ही नष्ट हो जाते हैं। यथा—

महापातकयुक्तो वा युक्तो वाऽप्युपपातकैः ।
भस्मस्नानेतत्सर्वं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ।।

(देवी भागवत्।स्कन्ध ११।अ० १४)

भस्म धारण करने से शरीर रुद्र के समान हो जाता है। यथा—

तस्मादेतच्छिरस्नानमाग्नेयं यः समाचरेत् ।
अनेनैव शरीरेणण हिरूद्रो न संशयः ॥
(देवी भागवत्।स्कन्ध ११।अ० १४)

भस्म धारण करने के पश्चात् यदि अभक्ष्य भी भक्ष्य कर लिया जाता है तो उनका वह अभक्ष्य पदार्थ भक्ष्य ही हो जाता है। यथा—

अभक्ष्य भक्षणं येषां भस्मधारणपूर्वकम् ।
तेषां तद् भक्ष्यमेव स्यान्मुने ! नाऽत्रविचारणा ॥१३॥
(देवी भागवत्।स्कन्ध ११।अ० १४)

जो जल में स्नान करने से पूर्व भस्म से स्नान करता है वह ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी कोई भी हो ; सम्मानपूर्वक, प्रेम व भक्ति भाव से श्रद्धापूर्वक स्नान कर पाप से मुक्त होकर परमगति को प्राप्त करता है। आग्नेय भस्म से योगियों को स्नान करना अधिक उपयुक्त है। भस्म स्नान करने से मनुष्य प्रकृति रूप बन्धन से मुक्त होता है। (१४-१५-१६)

यः स्नाति भस्मना नित्यं जले स्नात्वा ततः परम् ।
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवाऽऽदरात् ॥१४॥
सर्वपापर्विनिर्मुक्तःसयाति परमांगतिम् ।
आग्नेयं भस्मनास्नानं यतीनाञ्चविशिष्यते ॥१५॥
आर्द्रस्नाना द्वरं भस्मस्नानमार्द्रव धोध्रुवः ।
आर्द्रंतु प्रकृति विद्यात्प्रकृतिबन्धनं विदुः ॥१६॥
(देवी भागवत्।स्कन्ध ११।अ० १४)

भस्म रूपी तेजसम्पन्न स्नान को सदा ही करना चाहिए। कारण कि भस्म में अग्नि विद्यमान होती है जो कि सूक्ष्म रूप से उसमें रहती है। जिससे विद्युत शक्ति बढ़ती है। इससे स्नान कर मनुष्य भवपाश से मुक्त हो शिवलोक में जाता है। १९।

तस्मादेतच्छिरःस्नानमाग्नेयं यः समाचरेत् ।
भवपाशैर्विनिर्मुक्तः शिवलोकेमहीयते ॥१९॥

भस्म स्नान व भस्म धारण से ज्वर, राक्षस, पिशाच, पूतना, कुष्ठ गुल्म सभी प्रकार के भगन्दर, अस्सी प्रकार के वात रोग, चौंसठ प्रकार के पित्त रोग, बत्तीस प्रकार के श्लेष्मा रोग, व्याघ्र, चोर का भय व दूसरे दुष्ट ग्रहों का रोग इस प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार सिंह को देखकर हाथी भागते हैं। २०-२१-२२।

ज्वररक्षःपिशाचाश्च पूतनाकुष्ठगुल्मकाः।
भगन्दराणिसर्वाणिचाशातिर्वातरोगकाः ॥२१॥
चतुःषष्टिः पित्तरोगाः श्लेष्मासप्तत्रिपञ्चकाः।
व्याघ्रचौरभयंचैवाप्यन्येदुष्टग्रहाअपि ॥२२॥
भस्मस्नाने नश्यन्ति सिंहनेव यथा गजः।
शुद्धशीतजलेनैवभस्मना च त्रिपुण्ड्रकम् ॥

(देवी भागवत्।स्कन्ध ११।अ० १४)

शुद्ध शीतल जल और भस्म से जो त्रिपुण्ड्र धारण करता है वह निःसन्देह ही पर-ब्रह्म को प्राप्त करता है। जो कोई व्यक्ति भस्म से त्रिपुण्ड धारण करता है वह निश्चय ही पाप रहित होकर ब्रह्मलोक को जाता है। जिस प्रकार कि विधिपूर्वक मस्तक में अग्निवीर्य को धारण करने से प्राप्त होता है। भस्म व त्रिपुण्ड्र के धारण करने से मस्तक में लिखी यम की लिपि भी मिट जाती है तथा कण्ठ के ऊपर भाग से किये गये पाप भी इसके धारण करने से नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् भस्म को कण्ठ में धारण करने से कण्ठभोगादिक किये पातक, बाहु में धारण करने से भुजा से किये गये पाप वक्षस्थल में धारण करने से मन में किये गये पाप नाभि में धारण करने से मेढ के, गुद में धारण करने से गुह्य के पाप, पार्श्व में धारण करने से परस्त्री के आलिगन के सब पाप दूर हो जाते हैं। इसलिए त्रिलिंग युक्त भस्म ब्रह्मा, विष्णु व महेश रूपी तीनों अग्नियों को धारण किये हुए है उस त्रिपुण्ड्र को धारण करना चाहिए। २३-२४-२५-२६-२७।

यो धारयेत्परंब्रह्मासप्राप्नोति न संशयः।
"भस्मना च त्रिपुण्ड्रञ्चयः कोऽपिधारयेत्परम् ॥२२॥

स ब्रह्मलोकमाप्नोतिमुक्तपापो न संशयः।"
यथाविधिललाटेवै वह्नि नवीर्यप्रधारणात् ।।२३।।
नाशयेल्लिखितां यामीं ललाटस्थां लिपिं ध्रुवम् ।
कण्ठोपरिकृतं पापं नाशयेतत्प्रधारणात् ।।२४।।
कण्ठे च धारणात्कण्ठभोगादि कृत पातकम् ।
बाह्वोर्बाहुकृतं पापं वक्षसा मनसाकृतम् ।।२५।।
नाभ्यां शिश्नकृतं पापं गुदेगुद कृतं हरेत् ।
पार्श्वयोर्धारणाद्ब्रह्मन्परस्त्र्यालिङ्गनादिकम् ।।२६।।
तद्भस्मधारणं शस्तं सर्वत्रैवत्रिङ्गकम् ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्र्यग्नीनांचधारणम् ।।२७।।

भस्म में शयन करने से वह व्यक्ति आत्मनिष्ठ होता है। भूत, प्रेत, पिशाच व बड़े दुःसह रोग भस्मनिष्ठ की निकटता से ही दूर हो जाते हैं। इसीलिए प्रकाशमान होने से इसे भसित व पापों की भक्षक होने से भस्म कहलाती है। ३१-३२

भस्मशायी च पुरुषो भस्मनिष्ठ इतिस्मृतः।
भूतप्रेतपिशाचाद्यारोगाश्चातीवदुःसहाः ।।३१।।
भस्मनिष्ठस्यसान्निध्याद्विद्रवन्तिनसंशयः ।
भासनाद्भसितंप्रोक्तंभस्मकल्मषभक्षणात् ।।३२।।

(देवी भागवत्।स्कन्ध ११।अ० १४)

अतः आयु, ऐश्वर्य और मोक्ष की कामना करने वाले व्यक्ति को नित्य ही भस्म धारण करना चाहिए।

आयुष्कामोऽथवा विद्वानभूतिकामोऽथवा नरः।
नित्यं वै धारयेद् भस्म मोक्षकामी च वै द्विजः ।।३६।।

(देवी भागवत्।स्कन्ध ११।अ० १४)

शौचादि कर्म कर स्वच्छ जल से स्नान करना चाहिए। फिर शिखा से मस्तक पर्यन्त तक भस्म लगाना चाहिये। जल से स्नान करने

से तो शरीर के मात्र वाहरी मैल ही दूर होते हैं। परन्तु विभूति स्नान से बाहर व भीतर दोनों का ही मल नष्ट होता है अतः जल से स्नान न किया हो तो भी विभूति स्नान करना ही चाहिए। क्योंकि भस्म स्नान के बिना किया गया कर्म भी न करने के बराबर ही होता है। घोर राक्षस, प्रेत व अन्य क्षुद्र जन्तु त्रिपुण्ड्र धारण वालों को देखकर निश्चय भाग जाते हैं। यथा—

त्रिपुण्ड्र धारणं दृष्ट्वा पलायन्ते न संशयः।
कृत्वा शौचादिकं कर्मस्नात्वातुविमले जले ॥४१॥
भस्मनोद्धूलनं कार्यमापादलमस्तकम्।
केवलं वारुणं स्नानं देहे वाह्यमलापहम् ॥४२॥
विभूतिस्नानमनघंबाह्यान्तरमलापहम्।
त्यक्त्वाऽपिवारुणं स्नानंतत्परः स्यान्नसंशयः ॥४३॥
कृतमप्यकृतं सत्यं भस्मस्नानंविना मुने।
भस्मस्नानंश्रुतिप्रोक्तमाग्नेयं स्नान मुच्यते ॥४४॥

विमर्श—यहाँ देवी भागवत्/स्कन्ध ११/अध्याय १४ के श्लोक २६ की इस वात से मैं सहमत नहीं हूँ कि शिश्न व गुदा का किया गया पाप तथा पर स्त्री को अपने अंकपाश में बाँध लेना (यदि अंकपाश में परस्त्री को आबद्ध कर लिया तो उससे संभोग भी निश्चित सा ही है यदि कहीं तत्कालिक दैहिक न हो तो मानसिक संभोग व वाणी संभोग तो निश्चित है इसमें दो राय नहीं है।) इन दुष्कर्मों का भी भस्म लगाने से सारे दोष नष्ट हो जाते हैं। जो कि भस्म में यह एक दोष रूप में मैं मानता हूँ। भस्म को तो चाहिए कि परस्त्री गमन करने वालों तथा पर स्त्री व लड़की को अपने अंकपाश में आवद्ध करने वाले को इतना कठोर से कठोर दण्ड दे कि उस व्यक्ति को तो महसूस हो ही कि मैं ये कष्ट क्यों पा रहा हूँ? साथ ही अन्य भी उसके कष्टों को देखकर परायी स्त्री, किसी की माँ-बहन-बेटी व अबला को अपने आलिगन बद्ध करने को तो क्या स्पर्श करने को भी दुःसाहस न कर

सके। मेरे विचार से तो मात्र इसी एक गुण ने भस्म के पूर्व के सारे वर्णित गुणों को धूमिल कर दिया है। इस तरह से तो दिल खोलकर भस्म धारी ईश्वर भक्त होने के ढोंग रचाने के साथ ही व्यभिचारी भी बनेंगे। कारण कि भस्म लगाने से उन्हें तो व्यभिचार का दोष लगेगा ही नहीं। यथा—

नाभ्यां शिश्नकृतं पापं गुदेगुव खतं हरेत्।
पार्श्वयोर्धारणाद् ब्रह्मन्परस्त्र्यालिंगनादिकम्॥

धन्य धन्य हे प्रभु ! तेरी माया !

बिल्व पत्र

बिल्व का जिस प्रकार चिकित्सा शास्त्र में वर्णन मिलता है और महत्व है उससे कई गुना अधिक महत्व भगवान शिव शंकर की पूजा में व्यवहृत करने का है। शास्त्रों में यहाँ तक लिखा गया है कि जिस देशकाल में बिल्व की प्राप्ति होती हो वहाँ बिना बिल्व पत्र के शिव की पूजा नहीं करनी चाहिए। पूजा व्यर्थ है। निष्फल है। यथा—

शिवपूजनं सति संभवे बिल्वपत्ररहितं न कार्यम्।

फिर कहा गया कि जिस देश में बिल्व पत्र सुविधा से प्राप्त हो सकता है। वहाँ सदा ही शिव पूजन में ताजा बिल्व पत्र जो कि छिद्र युक्त या कटा फटा न हो उसे ही लेना चाहिए। छिद्र युक्त या अपूर्ण पत्र से पूजा करना भी निष्फल व पुण्यहीन है तथा दोष भी लगता है।

नित्यमार्द्रैरनाविद्धैर्बिल्वपत्रैः सदाशिवम्॥
पूजयस्व महादेवं तस्मान्माप्रमदो भव॥

(ब्रह्माण्ड पुराण)

बिल्व पत्रों को शिव पूजन के समय शुद्ध ज़ल से धोकर अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए। फिर उस पत्र पर ही चन्दन से **ॐ नमः शिवाय** इस पंचाक्षर मंत्र को लिखकर इस मंत्र के ही उच्चारण करते हुए शिव-पूजन करना चाहिए। इससे मनुष्य पापों से मुक्त होता है तथा शिवलोक प्राप्त होता है।

पंचाक्षरेण मन्त्रेण बिल्वपत्रैः शिवार्चनम्।
करोति श्रद्धया यस्तु स गच्छेदेश्वरं पदम्॥

(ब्रह्माण्ड पुराण)

बिल्व पत्र को अमावस्या, चतुर्थी, नवमी व चतुर्दशी, संक्रांति, अष्टमी व सोमवार के दिन में नहीं तोड़ना चाहिए। इससे मनुष्य

महादोष का भागी होता है तथा नरक को प्राप्त करता है। भगवान शंकर उस व्यक्ति से अप्रसन्न होते हैं।

त्रिल्ब पत्र के अभाव में जहाँ की नवीन पत्र किसी भी दशा में उपलब्ध नहीं हो सकते वहाँ शुष्क व पुराने बिल्व पत्रों से ही शिव-पूजन का निर्देश दिया गया है। यथा—

शुष्कैः पर्युषितैः पत्रैरपि बिल्वस्य नारद।
पूजयेद्गिरिजानाथमलाभे यत्नतो नरः॥

(शिव रहस्य)

वैसे पूजन कार्य में पुराने व बासी पुष्प लेने का विधान नहीं है परन्तु अपवाद रूप गंगा जल, तुलसी के दल (पत्र), कमल के पुष्प तथा बिल्व पत्र को पुराना नहीं माना जाता। अतः ताजे बिल्व पत्र के अभाव में हम पुराने बिल्व पत्र का भी उपयोग कर सकते हैं। यथा—

अवर्ज्यं जाह्नवीतोयं तुलसीपद्म बिल्वकम्॥

यदि भक्त चाहें तो बिल्ब इकट्ठा भी तोड़कर रख सकते हैं क्योंकि एक बार का बिल्व पत्र तोड़ा हुआ चालीस दिन तक खराब नहीं होता।

चत्वारिंशद्दिनं बिल्वं कमलं त्रिदिनं शुभम्॥

यदि कभी ऐसा भी संभव हो जाय कि ताजा बिल्व पत्र प्राप्त न हो सके तो उस दशा में चढ़ाये गये पुराने बिल्व पत्र को ही पवित्र जल से धोकर उससे पुनः शिव-पूजन किया जा सकता है अथवा यदि कहीं या किसी समय नवीन बिल्व प्राप्त न हो सकें या कोई ऐसा देश जहाँ कि बिल्व पत्र प्राप्त न होता हो अथवा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध न हो उस दशा में शुष्क बिल्व पत्र को चूर्ण करके रख लेना चाहिए और उसी बिल्व चूर्ण से शिव-पूजन करना चाहिये। यथा—

अर्पितान्यपि बिल्वानि प्रक्षाल्य च पुनः पुनः।
शंकरायार्पणीयानि न नवानि यदि क्वचित्।

(स्कन्द पुराण)

चूर्णीकृत्वान्यपि प्राज्ञैः बिल्वपत्राणि वैदिकैः।
संपाद्य पूजयेदीशं पत्राभावे विचक्षणः ।। (पद्म पुराण)

जब पुरुष बिल्व पत्र, बिल्व पुष्प या बिल्व फल से शिव-पूजन करे तो शिवलिंग पर पुष्प का मुख ऊपर की ओर करके चढ़ावें। पत्र को नीचे मुख करके चढ़ावें और बिल्व फल को वह जिस दशा में ही उत्पन्न हुआ हो उसी दशा में चढ़ाना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य सभी प्रकार के जाने अनजाने में किये गये दुष्कर्मों के दोषों से मुक्त होता है। यथा—

पुष्पमूर्ध्वमुखं योज्यं पत्र योज्यं त्वधोमुखम् ।
फलं तु सम्मुखं योज्य यथोत्पन्नं तथार्पयेत ।।
बिल्वपत्रैर्महादेवं स्वाहृतैरेव कोमलैः ।
य पूजयति यत्नेन पदं प्राप्नोति शाङ्करम् ।।

इस प्रकार के उपरोक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि भस्म की तरह शिव-पूजन में प्रयुक्त होने वाले पदार्थों में बिल्व पत्र का भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है, मान्यता है। अतः शिवपूजन में इसके निश्चय ही उपयोग करना चाहिये।

चिकित्सा शास्त्र के दृष्टिकोण से भी बिल्व का काफी अधिक महत्व है। आम तौर पर भी लोग बेल का मुरब्बा, बेल का शर्बत बनाकर गर्मी के दिनों में खाते हैं तथा यूँ भी पका फल खाने में उपयोग करते हैं। शुष्क फल के गूदे की धूप में अच्छी तरह सुखा कर चूर्ण कर लेते हैं और इसको ताजे जल से सेवन करने से पुराने से पुराने संग्रहणी व अतिसार में लाभ पहुंचता है। कच्चे फल का गूदा आग में पका कर पुराने गुड़ या मधु के साथ खाने से रक्तातिसार, रक्त प्रवाहिका, रक्तार्श में लाभ करता है। और विबन्ध में पका फल खिलाते हैं। इसका पत्र स्वरस ईक्षुमेह को नष्ट करता है, पूयमेह को नष्ट करता है। इस प्रकार अनेकों रोगों को दूर करते हुए बिल्व हमें शारीरिक व मानसिक दोनों रूप से स्वस्थ करता है।

।। ॐ शान्ति शान्ति शान्ति ।।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

धर्म-ग्रन्थ

१. महाशिव पुराण
२. देवी भागवत् पुराण
३. पद्म पुराण
४. स्कन्द पुराण
५. तन्त्रसार
६. सवंत्सर प्रदीप
७. वृहज्जाबालोपनिषद
८. योगसार
९. इत्येकादशीतत्वम्
१०. लिङ्ग पुराण
११. केदार खण्ड
१२. मंत्र महार्णव
१३. शिवाज्ञाविद्या ग्रन्थ
१४. शंकर पूजा पद्धति

वनस्पति विज्ञान ग्रन्थ

1. Indian Trees
   (By D. Brandis)
2. The Wealth of India
   (By CSIR Publication)
3. Indian Medicinal Plants
   (By Kirti Kar & Basu)

कोश ग्रन्थ

१. शब्द कल्पद्रुम
२. वाचस्पत्यम्
३. शब्द स्तोम महानिधि
४. हलायुध
५. बांग्ला भाषार अभिधान
६. मानक हिन्दी कोश

आयुर्वेदिक ग्रन्थ

१. शालिग्राम निघण्टु
२. अभिनव निघण्टु
३. आयुर्वेदीय औषधि निघण्टु
४. निघण्टु आदर्श
५. राजनिघण्टु
६. भावप्रकाश निघण्टु
७. वनस्पति चन्द्रोदय
८. वनौषधि विशेषांक (धन्वन्तरि)
९. द्रव्यगुण विज्ञान (आचार्य प्रियव्रत शर्मा)

तीन उपनिषद

(ईशावास्य, मुण्डक, श्वेताश्वतर)

लेखक—नन्दलाल दशोरा

मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह क्षणिक को ही महत्व देकर शाश्वत की उपेक्षा करता रहता है। किन्तु क्षणिक सुख के पीछे कितना दुःख छिपा है इसका उसे ज्ञान नहीं है। जिस कारण इसके अवश्यम्भावी परिणामों से वह मुक्त नहीं हो सकता।

भारतीय अध्यात्म की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसमें जीवन और अध्यात्म इन दोनों का ही इस प्रकार समन्वय किया गया है कि जिससे मनुष्य भौतिक जगत में रह कर भी उच्च जीवन हेतु अग्रसर हो सकता है। अध्यात्म की वेदी पर जीवन की बलि भी नहीं दी गई और जीवन के लिए अध्यात्म का तिरस्कार भी नहीं किया गया।

उच्च जीवन के लिए इन्हीं महान आदर्शों का समन्वय और सम्पूर्ण ज्ञान का निरूपण करने वाले ग्रन्थ ही उपनिषद हैं। जो सभी ग्रन्थों को नहीं पढ़ सकते अथवा उनके क्लिष्ट सिद्धान्तों को नहीं समझ सकते उनके लिए उपनिषद ही सर्वोपरि महत्व के हैं। जिनके अध्ययन से उन्हें भारतीय चिंतन की पराकाष्ठा का ज्ञान हो सकेगा। इसी महत्वपूर्ण एवं शाश्वत ज्ञाननिधि का थोड़ा सा परिचय देने के लिए ही इन तीन उपनिषदों का चयन किया गया है।

प्रकाशक

रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार-२४६४०१

योगवाशिष्ठ (महारामायण)

सम्पादक—श्री नन्दलाल दशोरा

भारतीय अध्यात्म ग्रन्थों में योगवाशिष्ठ का स्थान सर्वोपरि है। अद्वैत की धारणा को परिपुष्ट करने वाला, अध्यात्म के गूढ़ सिद्धान्तों का विवेचन करने वाला, एवं भारतीय दर्शन की मान्यताओं का समस्त सार इसमें समाहित है। भारतीय चिंतन का यह प्रतिनिधि ग्रन्थ है जिसके मनन से समस्त भ्रांतिपूर्ण धारणाएँ निर्मूल होकर सत्य-स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। महर्षि वशिष्ठ ने जो ज्ञान अपने पिता ब्रह्मा से प्राप्त किया था वह उन्होंने भगवान राम को दिया जिससे वह जीवन्मुक्त होकर रहे। इसी वशिष्ठ और राम संवाद के ज्ञान का संग्रह महर्षि बाल्मीकि ने जनकल्याण के लिए किया था।

यह ग्रन्थ केवल तात्विक विवेचन ही नहीं है अपितु मोक्ष साधना की विधि को इसमें इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि प्रत्येक पाठक इसका प्रयोग घर बैठे कर सकता है। इसमें न हठयोग जैसी कठिन क्रियाएँ करनी हैं, न मंत्रजाप, न पूजा और प्रार्थना करनी है। यदि कोई साधक इसमें दी गई विधियों को पूर्णतया प्रयोग करें तो उसे मोक्ष लाभ मिल सकता है।

इस ग्रन्थ को पढ़ने के पश्चात् किसी अन्य ग्रन्थ को पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि जो बातें इस ग्रन्थ में हैं वे अन्य ग्रन्थों में भी मिलेगी ; जो इसमें नहीं हैं वे कहीं नहीं मिलेगी। महर्षि वशिष्ठ ने अनेक उपाख्यानों के माध्यम से जो ज्ञान, भगवान राम को दिया वही योग वाशिष्ठ के नाम से विख्यात यह अमर ग्रन्थ वेदान्त का सारभूत उपदेश माना गया है जिसे अब नवीनतम शैली में श्री नन्द लाल दशोरा ने अनथक प्रयास किया है।

पातजलि योगसूत्र (योग दर्शन)

अनुवाद और व्याख्या—श्री नन्दलाल दशोरा

योग का अर्थ है मिलना, जुड़ना संयुक्त होना आदि। जिस विधि से साधक अपने प्रकृतिजन्य विकारों को त्यागकर अपनी आत्मा से जुड़ता है वही योग है। पातंजलि चित्त वृत्तियों के निरोध को ही योग कहते हैं। इस मार्ग पर चलने से किसी प्रकार का भय नहीं है। जहाँ-जहाँ अवरोध आते हैं उनका इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर वर्णन दिया गया है जिससे साधक इससे बचता हुआ अपने मन्तव्य तक पहुंच सकता है। इस ग्रन्थ की व्याख्या का उद्देश्य सामान्यजनों में योग के प्रति रुचि जाग्रत करता है। पुस्तक में योग सम्बन्धी शब्दार्थों पर अधिक ध्यान न देकर उसके भावों को प्रधानता दी गई है जिससे यह विषय बोधगम्य हो सके।

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) हरिद्वार